॥ कोबातीर्थमंडन श्री महावीरस्वामिने नमः ॥

॥ अनंतलब्धिनिधान श्री गौतमस्वामिने नमः ॥ ॥ गणधर भगवंत श्री सुधर्मास्वामिने नमः ॥

॥ योगनिष्ठ आचार्य श्रीमद् बुद्धिसागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥ ॥ चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीमद् कैलाससागरसूरीश्वरेभ्यो नमः ॥

आचार्य श्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर

पुनितप्रेरणा व आशीर्वाद

राष्ट्रसंत श्रुतोद्धारक आचार्यदेव श्रीमत् पद्मसागरसूरीश्वरजी म. सा.

जैन मुद्रित ग्रंथ स्केनिंग प्रकल्प

ग्रंथांक : १

श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
कोबा, गांधीनगर-३८२००७ (गुजरात)
(079) 23276252, 23276204
फेक्स : 23276249
Websiet : www.kobatirth.org
Email : Kendra@kobatirth.org

शहर शाखा

आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
शहर शाखा
आचार्यश्री कैलाससागरसूरि ज्ञानमंदिर
त्रण बंगला, टोलकनगर
परिवार डाइनिंग हॉल की गली में
पालडी, अहमदाबाद – ३८०००७
(079) 26582355

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

नवतत्त्व

(हिन्दी-भाषानुवाद-सहित)

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

ॐ

नव-तत्त्व ।

(हिन्दी-भाषानुवाद-सहित)

प्रकाशक—

श्रीआत्मानन्द-जैन-पुस्तक-प्रचारक-मंडल,

रोशनमुहल्ला—आगरा।

वीर संवत् २४७१ आत्म संवत् ५०

विक्रम सं० २००२ ईस्वी सन् १९४५

चतुर्थवार १०००] सर्वाधिकार रक्षित [मूल्य १० आने

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

अनुक्रमणिका ।

विषय	पृष्ठ
जीवतत्त्व	१३
अजीवतत्त्व	२१
पुण्यतत्त्व	२६
पापतत्त्व	४२
आस्रवतत्त्व	५७
संवरतत्त्व	६२
निर्जरातत्त्व	६८
बन्धतत्त्व	७५
मोक्षतत्त्व	९२

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

प्रकाशक का निवेदन ।

नवतत्व की चतुर्थावृत्ति प्रकाशित करते हुए हमें हर्ष होता है । मण्डल हिन्दी जैन साहित्य को जो अपूर्व सेवा कर रहा है वह आप लोगों से छिपा नहीं है । हिन्दी राष्ट्र भाषा होनेवाली है अतः जैन साहित्य का हिन्दी भाषा में प्रचार होना अतीव आवश्यक है ।

प्रस्तुत पुस्तक की सहायता के लिए रु० १००) श्रीमती अंगूरी बीबी ने प्रदान किये हैं अतः मण्डल आपका अत्यन्त आभारी है और हम हमारे और दानवीर भाइयों को भी देश-काल गति का ध्यान रखते हुए हिन्दी साहित्य के प्रचार में मण्डल को सहायता देने के लिए आकृष्ट करते हैं ।

कागज़ की महर्घता के कारण और छपाई का रेट भी बहुत बढ़जाने से हमको मजबूर होकर इस आवृत्ति में कीमत बढ़ानी पड़ी है ।

यह मण्डल पं० अमृतलाल ताराचंद दोसी का भी आभारी है कि जिन्होंने इस आवृत्ति में बहुत सा संशोधन करके पुस्तक को ज्यादा उपयोगी बनाया है ।

मानद मन्त्री

आगरा रोशन-मुहल्ला } दयालचन्द जोहरी, जवाहरलाल नाहटा
ता० २७-४-१९४५ } श्रीआत्मानंद जैन पुस्तक प्रचारक मंडल

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

श्रीमान् बाबू नोनकरनजी मनसारामजी जौहरी
बनारस वालों के कुटुम्ब का परिचय।

जिन बाबू मनसारामजी का फोटो इस पुस्तक में आप देख रहे हैं उनके पूर्वज जयपुर राज्य के निवासी थे। प्रायः दो सौ वर्ष हुये कि ला० तुलारामजी ओसवाल चन्डालिया अपने पुत्र गिरधारीलालजी को लेकर जयपुर से बनारस आये थे, आप वहां पर बजाजी का काम करते थे।

जिस समय गिरधारीलालजी जयपुर में रहते थे। उनके १८ सन्ताने हुई, जिनमें से केवल एक बालक जिसका नाम नोनकरन था और एक लड़की यही दो सन्तानें जीवित रहीं। शेष छोटी अवस्था में ही काल कर गई थीं।

जब बालकों में केवल नोनकरनजी ही जीवित बचे उस समय किसी महात्मा ने गिरधारीलालजी से कहा कि इस बालक को यदि तुम पूर्व देश की ओर ले जाओगे तो यह दीर्घायु होगा और जीवित रहेगा। यही कारण आपके पूर्वजों का जयपुर से बनारस आने का था।

तीस वर्ष तक लाला गिरधारीलालजी बनारस में रहे। बाद को उन्होंने जयपुर जाने का विचार किया। उसी समय बनारस के लाला गोकुलचन्दजी ने अपनी पुत्री के साथ नोनकरनजी का विवाह कर दिया। उसके बाद लाला गिरधारी लालजी ने जयपुर जाना स्थगित कर दिया और निश्चित रूप से बनारस में ही रहने लगे।

लाला नोनकरनजी बहुत ही बुद्धिमान प्रतिभाशाली नैष्ठिक धर्मानुरागी थे। आपकी रुचि जवाहरात के व्यापार की ओर थी। इस कारण आपने जवाहरात का काम सीखा और थोड़े

For Private And Personal

ही समय में अपनी प्रतिभा सम्पन्नता के कारण बहुत ही कुशल जौहरी बन गये। और आप जवाहरात का व्यापार करने लगे। जौहरियों में आप प्रथम श्रेणी के जौहरी समझे जाने लगे। आपकी जवाहरात की परख की प्रशंसा और योग्यता यहां तक थी कि आपने नेत्रों से पट्टी बाँध देने पर भी आप हाथ से टटोल कर ही बतला देते थे कि यह अमुक नगीना है। आपके लिये यह कम प्रशंसा की बात नहीं थी। आपके करीब १०० शागिर्द थे ६७ वर्ष की अवस्था में आप स्वर्गवासी हुए।

आपके चार पुत्र थे। सब से बड़े गम्भीरचन्दजी, दूसरे मनसारामजी, तीसरे मोहनलालजी, और चौथे केसरीचन्दजी। आपके एक कन्या भी हुई थी। वह विवाह के बाद ही मृत्यु को प्राप्त हो गई। चारों भाइयों में से सब से प्रथम गम्भीरचन्दजी स्वर्गवासी हुए।

मनसारामजी ने विवाह नहीं किया। आपका स्वभाव बहुत ही अच्छा था। आप बड़े मिलनसार उदार व्यक्ति थे। जवाहरात के व्यापार में आप भी अपने पिता बा० नोनकरनजी के समान बहुत कुशल जौहरी थे। जवाहरात के ८४ संग (पत्थर) मशहूर हैं उनमें से आपने ८० संग एकत्र किये थे इतने संगो का एकत्र होना बहुत ही कठिन काम है, आपको लगा रहता था कि सभी संग हमारे यहां होवे इन संगो के एकत्र करने में बाबू दयालचन्दजी चौरडीया जौहरी आगरा निवासी ने भी जिन्होंने उपरोक्त बाबू साहिब से जवाहरात का काम सीखा, बहुत कुछ प्रयत्न किया था आप १७ वर्ष कलकत्ते भी रहे थे, शेष जीवन बनारस में व्यतीत कर महावदी १५ संवत १९७६ में स्वर्गवासी हुये।

बा० मोहनलालजी का विवाह आगरा निवासी बा० छजमलजी लोढ़ा की पुत्री श्रीमती अंगूरी बीबी से हुआ था उस समय आपकी अवस्था १२ वर्ष की थी। आप भी बहुत कुशल

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

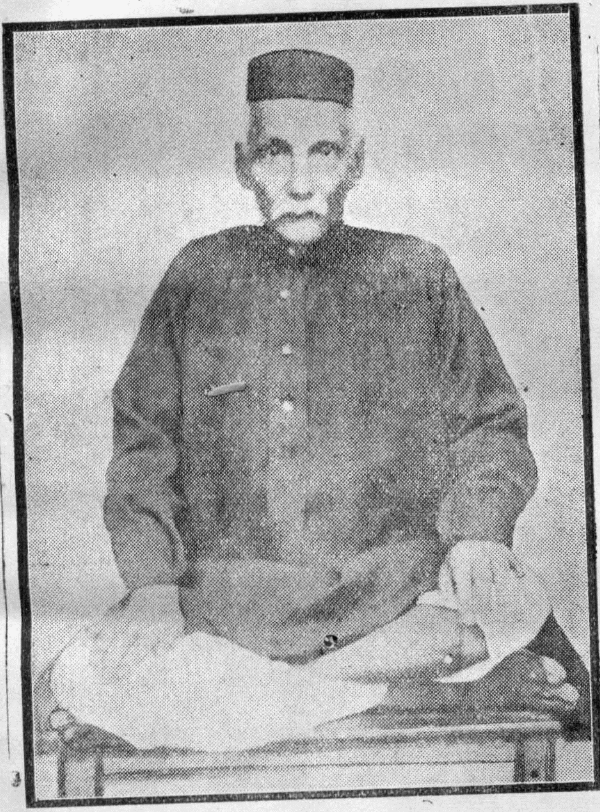

बा० मंसारामजी चण्डालिया जौहरी, बनारस ।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

व्योपारी थे और समाज सेवा भी कूट २ कर भरी थी। आपश्री ४७ वर्ष की आयु भोग कर वैशाख सुदि १ संवत् १९५७ में हैजे की बीमारी से मृत्यु को प्राप्त हुये। बा० केसरीचन्दजी के दो विवाह हुए थे। पहिला ला० चुन्नीलालजी लोढ़ा की पुत्री से आगरा में और दूसरा बा० हजारीमलजी कलकत्ते वालों की पुत्री से हुआ था। इनकी दोनों पत्नियां दो दो तीन २ वर्ष जीवित रहीं। आपका देहान्त भादों सुदी १५ संवत् १९५८ में हुआ।

कुटुम्ब में कोई बालक न होने के कारण बा० मनसारामजी ने करीब ३६ वर्ष हुए तब बा० मोहनलालजी की धर्म पत्नी श्रीमती अंगूरी बीबी के जोधपुर से बा० लाभचन्दजी को बुला कर गोद बिठा दिया। लाभचन्दजी भी बहुत धार्मिक परोपकार की भावना रखने वाले व्यक्ति हैं, उनका विवाह बा० शिखरचन्द जी नाहटा की पुत्री श्रीमती इन्द्रा बीबी से हुआ। आपके इस समय चार लड़के और १ लड़की है। (१) मंगलचन्द, (२) रविचन्द (३) रमेशचन्द, (४) ज्ञानचन्द, (५) निर्मलकुमारी।

प्रस्तुत पुस्तक की सहायतार्थ रु० १००) श्रीमती अंगूरी बीबी ने प्रदान किये हैं। आप धर्मप्रियता और दानप्रियता के लिये मशहूर हैं। आपकी अवस्था इस समय ८० वर्ष की है यह मण्डल आपका अति आभारी है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

॥ ॐ ॥

नवतत्त्व

जीवाजीवा पुरणं,
पावासवसंवरो य निज्जरणा ।
बंधो मुक्खो य तहा,
नव तत्ता हुंति नायव्वा ॥ १ ॥

जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर निर्जरा, बन्ध और मोक्ष ये नवतत्त्व जानने योग्य हैं ॥ १ ॥

(१) चेतना लक्षणो जीवः—जिसमें चेतना—ज्ञान हो, उसे जीव कहते हैं। (२) जिसमें चेतना—ज्ञान नहीं है, उसे अजीव कहते हैं। (३) जिस कर्म से जीव सुख पाता है, उस कर्म का नाम पुण्य है। (४) जिस कर्म से जीव दुःख पाता है, उस कर्म का नाम पाप है। (५) आत्मा से सम्बन्ध (मेल) करने के लिये जिसके द्वारा पुद्गलद्रव्य आते हैं, उसे आस्रव कहते हैं। (६) आत्मा से पुद्गल

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

द्रव्य का सम्बन्ध होना जिसके द्वारा रुक जाय, उसे संवर कहते हैं। (७) आत्मा से लगे हुए कुछ कर्म, जिसके द्वारा आत्मा से अलग हो जाय, उसे निर्जरा कहते हैं। (८) दूध और पानी की तरह आत्मा और पुद्गलद्रव्य का आपस में मिलना, बन्ध कहलाता है। (९) सम्पूर्ण कर्मों का आत्मा से अलग होना, मोक्ष कहलाता है।

ज्ञान और चैतन्य का मतलब एक है तथा जड़ और अजीव का मतलब एक है। इन नवतत्त्वों में से जीव और अजीव जानने योग्य हैं; पुण्य, संवर, निर्जरा और मोक्ष ग्रहण करने योग्य हैं; पाप आस्रव और बन्ध त्याग करने योग्य हैं। आत्मा जिन पुद्गलद्रव्यों को ग्रहण कर अपने प्रदेशों से मिला लेता है वे पुद्गलद्रव्य, कर्म कहलाते हैं। जीव और अजीव ये दोही तत्त्व मुख्य हैं। क्यों कि पुण्य पाप आश्रव और बन्ध ये कर्म रूप होने से अजीव में और संवर निर्जरा और मोक्ष ये जीव के स्वभाव होने से इनका जीव में समावेश हो जाता है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

"अब जीव आदि तत्त्व के भेद कहते हैं।"

चउदस चउदस बाया-
लीसा बासीअ हुंति बायाला।
सत्तावन्नं बारस,
चउ नव भेआ कमेणेसिं ॥ २ ॥

जीव के चौदह, अजीव के चौदह, पुण्य के बयालीस, पाप के बयासी, आस्रव के बयालीस, संवर के सत्तावन, निर्जरा के बारह, बन्ध के चार और मोक्ष के नव भेद हैं ॥२॥

उपर बताई हुई नवतत्त्वों के सब भेदों की संख्या दोसौ छियत्तर (२७६) है। उनमें अठयासी भेद अरुपी है और एक सौ अठयासी भेद रुपी है। संवर, निर्जरा और मोक्ष ये तीन तत्त्व आत्मा के सहज स्वभाव होने से अरुपी है और जीव, पुण्य, पाप, आश्रव और बंध ये पांच तत्त्व कर्म रुप होने से रुपी है। यद्यपि जीव अरुपी है फिर भी कर्म-युक्त संसारी जीव की अपेक्षा से यहां रुपी में गिना गया है, तथा अजीव तत्त्व में १४ भेद में से पुद्गल के चार भेद रुपी हैं, और धर्मास्तिकाय आदि चार द्रव्य के दस भेद अरुपी हैं।

नवतत्त्व के रुपी अरुपी भेदों की और हेय-ज्ञेय उपादेय की यन्त्र द्वारा समझ : —

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

अंक	नाम	रूपिभेद	अरूपिभेद	हेयज्ञेयादि
१	जीव	१४	०	ज्ञेय
२	अजीव	४	१०	ज्ञेय
३	पुण्य	४२	०	उपादेय
४	पाप	८२	०	हेय
५	आश्रव	४२	०	हेय
६	संवर	०	५७	उपादेय
७	निर्जरा	०	१२	उपादेय
८	बंध	४	०	हेय
९	मोक्ष	०	९	उपादेय

"इस गाथा में छः प्रकार से जीव का विवेचन है।"

एगविह दुविह तिविहा,
चउव्विहा पंच छव्विहा जीवा।
चेयण तस इयरेहिं,
वेय गइ करण काएहिं ॥ २ ॥

चेतन रूप से जीव एक तरह का है; त्रस और स्थावर रूप से दो तरह का; स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुन्सकवेद रूप से तीन करह का; देवगति, मनुष्यगति, तिर्यञ्चगति और नरकगति रूप से चार तरह का; एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय रूप से पांच तरह का; पृथ्वीकाय,

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

जलकाय, तेजःकाय, वायुकाय वनस्पतिकाय और त्रसकायरूप से छः तरह का ॥ ३ ॥

सूर्य बादलों से चाहे जितना घिर जाय तो भी उसका प्रकाश कुछ न कुछ जरूर बना रहता है इसी तरह कर्मों के गाढ़ आवरण से ढके हुए जीव के ज्ञान का अनन्तवां भाग खुला रहता है; मतलब यह है कि पूर्णकर्मबद्ध दशा में भी जीव में कुछ न कुछ ज्ञान जरूर बना रहता है; यदि ऐसा न हो, तो जीव और जड़ में कोई फर्क ही न रहेगा।

सर्दी गरमी आदि से बचने के लिये जो जीव चल फिर सकें वे 'त्रस' कहलाते हैं, जैसेः—द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, आदि। चल फिर न सकें वे 'स्थावर' कहलाते हैं, जैसेः— एकेन्द्रिय जीव, वृक्ष, लता, पृथ्वीकाय, जलकाय आदि।

जिस कर्म के उदय से पुरुष के साथ सम्भोग करने की इच्छा होती है उस कर्म को 'स्त्रीवेद' कहते है। जिस कर्म के उदय से स्त्री के साथ सम्भोग करने की इच्छा होती है उस कर्म को 'पुरुषवेद' कहते हैं। जिस कर्म के उदय से स्त्री और पुरुष दोनों के साथ सम्भोग करने की इच्छा होती है उस कर्म को 'नपुन्सकवेद' कहते हैं।

देव, मनुष्य, तिर्यञ्च और नरक, ये चार गतियाँ हैं। अनादिकाल से इन गतियों में जीव घूम रहा है, और जब तक मुक्ति नहीं मिलती तब तक बराबर घूमता रहेगा।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

एकेन्द्रिय जीव वे हैं, जिन्हें सिर्फ शरीर हो, जैसे:—पृथ्वीकाय, जलकाय, तेजःकाय, वायुकाय और वनस्पति काय के जीव।

द्वीन्द्रिय जीव वे हैं, जिन्हें सिर्फ शरीर और जीभ हो जैसे:—केंचुआ, जोंक शंख आदि के जीव।

त्रीन्द्रिय जीव वे हैं, जिन्हें सिर्फ शरीर, जीभ और नाक हो, जैसे:—चोंटी, खटमल, जूं, इन्द्रगोप (बरसाती लाल रंग के कीड़े) आदि जीव।

चतुरिन्द्रिय जीव वे हैं, जिन्हें सिर्फ शरीर, जीभ, नाक और आंख हो जैसे:-बिच्छू, भौंरा, मक्खी, मच्छर आदि। पंचेन्द्रिय जीव वे हैं, जिन्हें शरीर, जीभ, नाक, आँख और कान हो, जैसे:—देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि।

काय का मतलब है शरीर, जिनका शरीर सिर्फ पृथ्वी का हो, वे पृथ्वीकाय; जिनका शरीर सिर्फ जल का हो वे जलकाय (अप्काय), जिनका शरीर सिर्फ तेजका हो, वे तेजःकाय (अग्नि काय); जिनका शरीर सिर्फ वायु का हो, वे वायुकाय; शाक, भाजी, फल, फूल आदि का जिनका शरीर हो, वे वनस्पतिकाय कहलाते हैं।

पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय, इनको 'षड्जीवनिकाय (छकाय) कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

" अब जीव के चौदह भेद कहते हैं ।"

एगिंदिय सुहुमियरा,
सन्नियर पणिंदिआ य सबितिचउ ।
अपजत्ता पज्जता,
कमेण चउदस जियठाणा ॥४॥

एकेन्द्रिय जीव के दो भेद हैं, सूक्ष्म और बादर । पंचेन्द्रिय के दो भेद हैं, संज्ञी और असंज्ञी (दोनों के मिलाकर चार भेद हुए) । द्वीन्द्रिय का एक भेद, त्रीन्द्रिय का एक भेद और चतुरिन्द्रिय का एक भेद (ये तीन और पहिले के चार मिलाकर सात हुए) ये सातों पर्याप्त और अपर्याप्त रूप से दो प्रकार के हैं । इस तरह जीव के चौदह भेद हुए ॥४॥

सूक्ष्म जीव वे हैं जिनको हम आंखसे नहीं देख सकते, न उन्हें अग्नि जला सकती है, न कोई चीज उनको उपघात पहुँचा सकती है, न वे किसी को उपघात पहुँचा सकते हैं, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियोंके उपयोग में नहीं आते, सारे लोक में वे भरे पड़े हैं ।

बादर जीव वे हैं, जिन्हें हम देख सकते हैं, आग उन्हें जला सकती है, मनुष्य आदि प्राणियों के उपयोग में वे आते हैं, उनको गति में रुकावट होती है, वे सारे लोक में

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

व्याप्त नहीं हैं किन्तु उनके रहने की जगह नियत है।

संज्ञी पचेन्द्रिय वे हैं जिनको पाँच इन्द्रियाँ और मन हो, जैसेः—देव, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि।

असंज्ञी पंचेन्द्रिय को पांचों इन्द्रियां होती हैं पर मन नहीं होता, जैसेः—मछली, मेढ़क तथा खून, वीर्य, वात, पित्त, कफ आदि के सम्मूर्च्छिम मनुष्य जीव।

जिन जीवों की जितनी पर्याप्तियां कही गई हैं उन पर्याप्तियों को यदि वे पूरी कर चुके हों, तो 'पर्याप्त' कहलाते हैं; जिन जीवों ने अपनी पर्याप्ति पूरी नहीं की, वे 'अपर्याप्त' कहलाते हैं।

"अब जीव का लक्षण बतलाते हैं।"

नाणं च दंसणं चेव,
चरित्तं च तवो तहा।
वीरियं उवओगो अ,
एअं जीअस्स लक्खणं ॥५॥

ज्ञान, दर्शन, चरित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये जीव के लक्षण हैं अर्थात् ये, जीव को छोड़ कर किसी दूसरे पदार्थ में नहीं रहते ॥५॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(१) पांच प्रकार का ज्ञान और तीन प्रकारका अज्ञान, ये दोनों ज्ञान शब्द से लिए जाते हैं। ज्ञान के पांच भेद ये हैं:—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्यवज्ञान और केवलज्ञान। अज्ञान के तीन भेद ये हैं,—मतिअज्ञान, श्रुत-अज्ञान, विभंगज्ञान। इनको क्रम से कुमति, कुश्रुत और कुअवधि भी कहते हैं। जिस जीव में ज्ञान हो, उसे सम्यग्दृष्टि और जिसमें अज्ञान हो उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं:—

(२) दर्शन के चार भेद हैं:—चक्षुर्दर्शन, अचक्षुदर्शन अवधिदर्शन और केवलदर्शन।

(३) चरित्र के दो भेद हैं:—भाव चारित्र और द्रव्य-चारित्र। भावचारित्र के पांच भेद हैं:—सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यात। क्रिया के निरोध को द्रव्यचारित्र कहते हैं।

(४) तप के दो भेद हैं:—द्रव्यतप और भावतप। द्रव्य तप के बारह भेद हैं, वे आगे कहे गये-हैं। इच्छा के निरोध को भाव तप कहते हैं।

(५) सामर्थ्य, बल अथवा पराक्रम को वीर्य कहते हैं।

(६) उपयोग के दो भेद हैं; साकार और निराकार। साकार उपयोग को ज्ञान कहते हैं, और निराकार उपयोग को दर्शन। ज्ञान के आठ भेद और दर्शन के चार भेद, यह बारह प्रकार का उपयोग है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

"छह पर्याप्तियों के नाम, और वे किन जीवों को कितनी होती हैं, सो कहते हैं।"

आहार-सरीर-इंदिय—,
पज्जत्ती आणपाण भासमणे ।
चउ पंच पंच छप्पिअ,
इग-विगला ऽसन्नि-सन्नीणं ॥६॥

आहारपर्याप्ति, शरीरपर्याप्ति, इन्द्रियपर्याप्ति, श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और मनःपर्याप्ति, ये छह पर्याप्तियाँ हैं। एकेन्द्रिय जीव को चार; विकलेन्द्रिय तथा असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय को पाँच और संज्ञीपंचेन्द्रिय को छह पर्याप्तियाँ होती हैं ॥ ६ ॥

शक्ति विशेष को पर्याप्ति कहते हैं; जीवसम्बद्ध पुद्गल में एक ऐसी शक्ति है जो आहार को ग्रहण कर उसका रस बनाती है, उस शक्ति का नाम है 'आहारपर्याप्ति'।

रसरूप परिणाम का खून, मांस, मेद (चर्बी), अस्थि (हड्डि) मज्जा (हड्डि के अन्दर का कोमल पदार्थ) और वीर्य बनाकर शरीर रचना करने वाली शक्ति को शरीर पर्याप्ति कहते हैं।

सात धातुओं में—रक्त मांस आदि में परिणत रस से इन्द्रियों के बनाने वाली शक्ति को 'इन्द्रियपर्याप्ति' कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

श्वासोच्छ्वास बनने योग्य पुद्गलद्रव्य को ग्रहण कर उसे श्वासोच्छ्वास रूप में परिणत करने वाली शक्ति को श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति' कहते हैं।

मन बनने योग्य पुद्गलद्रव्य को ग्रहण कर मनोरूप में परिणत करने वाली शक्ति को 'मनःपर्याप्ति' कहते हैं।

भाषायोग्य पुद्गलद्रव्य को ग्रहण कर भाषारूप में परिणत करने वाली शक्ति को 'भाषा पर्याप्ति' कहते हैं।

पदार्थ के स्वरूप का बदलना परिणाम कहलाता है, जैसे—दूध का परिणाम दही।

इस तरह आहार, शरीर, इन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, भाषा और मन, ये छः पर्याप्तियाँ हैं। इनमें से पहली चार पर्याप्तियाँ एकेन्द्रिय जीव को होती हैं। मनःपर्याप्ति को छोड़ बाकी की पाँच पर्याप्तियाँ विकलेन्द्रिय तथा असंज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को होती हैं।

द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय तथा चतुरिन्द्रिय जीवको 'विकलेन्द्रिय' कहते हैं। छः पर्याप्तियाँ संज्ञी पंचेन्द्रिय जीव को होती हैं। पहली तीन पर्याप्तियाँ पूरी किये बिना कोई जीव नहीं मर सकता।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

"द्रव्यप्राणों के दस भेद, और वे किन जीवों को कितने हैं, सो कहते हैं।"

पणिंदिअ-त्तिबलूसा-,
साऊ दस पाण चउ छ सग अट्ठ।
इग-दु-ति चउरिंदीणं,
असन्नि-सन्नीण नव दस य ॥७॥

पाँच इन्द्रियाँ, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु, ये दस प्राण कहलाते हैं। एकेन्द्रिय को चार प्राण; द्वीन्द्रिय को छह; त्रीन्द्रिय को सात; चतुरिन्द्रिय को आठ; असंज्ञी पंचेन्द्रिय को नव और संज्ञी पंचेन्द्रिय को दस प्राण होते हैं ॥ ७ ॥

(१) एकेन्द्रिय के चार प्राण ये हैं;—त्वगिन्द्रिय, श्वासोच्छ्वास, कायबल और आयु।

(२) एकेन्द्रियजीव की अपेक्षा, द्वीन्द्रिय जीव के रसनेन्द्रिय और वचनबल—ये दो प्राण अधिक हैं।

(३) द्वीन्द्रिय की अपेक्षा, त्रीन्द्रिय जीव को घ्राणेन्द्रियप्राण अधिक है।

(४) त्रीन्द्रिय की अपेक्षा चतुरिन्द्रिय जीव को चक्षुरिन्द्रिय—यह एक प्राण अधिक है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(५) चतुरिन्द्रिय की अपेक्षा असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय को श्रोत्रेन्द्रिय—यह एक प्राण अधिक है।

(६) असंज्ञी पंचेन्द्रिय की अपेक्षा, संज्ञी पंचेन्द्रिय को मनोबल—यह एक प्राण अधिक है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय के दो भेद हैं—मनुष्य और तिर्यञ्च। इनको सम्मूर्च्छिम कहते हैं सम्मूर्च्छिम मनुष्य को वचन बल नहीं होता इस लिये उसको आठ प्राण समझना चाहिये। वह यदि श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति को पूर्ण किये बिना ही मर जाय तो सात प्राण समझना।

नीचे लिखे हुये श्लोक में भी दस प्राणों का वर्णन है—

पंचेन्द्रियाणि त्रिविधं बलं च,
उच्छ्वासनिःश्वासमथान्यदायुः।
प्राणा दशैते भगवद्भिरुक्ताः,
तेषां वियोजीकरणं तु हिंसा ॥ १ ॥

पाँच इन्द्रियां, तीन बल मनोबल, वचनबल और कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु, ये दस प्राण, भगवान ने कहे हैं; जीव को इन प्राणों से जुदा करना, हिंसा कहलाती है।

जीव के ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि गुणों को "भावप्राण" कहते हैं।

॥ जीव तत्त्व समाप्त ॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

अजीव तत्त्व ।

"अब अजीवतत्त्व का वर्णन करते हुए प्रथम अजीव तत्त्व के चौदह भेद कहते हैं ।"

धम्मा धम्माऽगासा,
तिय तिय भेया तहेव अद्धा य ।
खंधा देस पएसा,
परमाणु अजीव चउदसहा ॥८॥

स्कन्ध, देश और प्रदेश रूप से धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के तीन तीन भेद हैं, इस लिये तीनों के नव भेद हुए; काल का एक भेद और पुद्गल के चार भेद हैं:—स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु। सब मिल कर अजीव के चौदह भेद हुए ॥ ८ ॥

स्कन्धः—चतुर्दशरज्ज्वात्मक लोक में पूर्ण जो धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय हैं, ये प्रत्येक 'स्कन्ध' कहलाते हैं। मिले हुए अनन्तपुद्गलपरमाणुओं के छोटे समूह को 'स्कन्ध' कहते हैं।

देशः—स्कन्ध से कुछ कम, अथवा बुद्धिकल्पित स्कन्धभाग को 'देश' कहते हैं।

प्रदेशः—स्कन्ध से अथवा देश से लगा हुआ अति

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

सूक्ष्म भाग (जिसका फिर विभाग न हो सके) 'प्रदेश' कहलाता है।

परमाणुः—स्कन्ध अथवा देश से पृथक्, प्रदेश के समान अतिसूक्ष्म स्वतन्त्र भाग 'परमाणु' कहलाता है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय के परमाणु नहीं होते।

अस्तिकाय—अस्ति का अर्थ है प्रदेश और कायका अर्थ है समूह, प्रदेशों के समूह को 'अस्तिकाय' कहते हैं।

कालद्रव्यका वर्तमान समय रूप एक ही प्रदेश है, प्रदेशों का समूह न होने से आकाशास्तिकाय की तरह 'कालास्तिकाय' नहीं कह सकते।

"इस गाथा में तथा इस से आगे की गाथा में अजीवतत्त्व का स्वरूप विशेष रूप से कहते हैं।"

धम्माऽधम्मा पुग्गल,
नइ कालो पंच हुंति अजीवा।
चलणसहावो धम्मो;
थिरसंठाणो अहम्मो अ॥ ६॥

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल, ये पांच अजीव द्रव्य हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

धर्मास्तिकाय, चलन स्वभाव वाला है अर्थात् जैसे मछली के चलने फिरने में जल सहायक है उसी तरह जीव और पुद्गल के सञ्चार में—हिलने डुलने में—धर्मास्तिकाय सहायक है। अधर्मास्तिकाय स्थिर स्वभाव वाला है अर्थात् जैसे वृक्षादि की छाया पक्षियों को विश्रान्ति लेने में-ठहरने में-कारण है उसी तरह जीव और पुद्गल को स्थिर रखने में अधर्मास्तिकाय कारण है ॥ ९ ॥

अवगाहो आगासं,
पुग्गल जीवाण पुग्गला चउहा ।
खंधा देस पएसा,
परमाणु चेव नायव्वा ॥ १० ॥

अवकाश देना आकाशास्तिकाय का स्वभाव है । जैसे दूध, शक्कर को अवकाश देता है उसी तरह आकाशास्तिकाय, जीव और पुद्गलों को अवकाश देता है । पुद्गल के चार भेद ये हैं; 'स्कन्ध, देश, प्रदेश और परमाणु ॥१०॥

आकाश के दो भेद हैं, लोकाकाश और अलोकाकाश ।

जितने आकाश देश में जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय और काल व्याप्त है, वह लोककाश कहलाता है, और उस से जुदा अलोकाकाश ।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

रूप, रस, गन्ध, स्पर्श और शब्द; ये सिर्फ पुद्गलास्तिकाय में रहते हैं, धर्मास्तिकाय आदि में नहीं।

"पुद्गल का लक्षण"

सद्दंधयार–उज्जोअ,
पभा-छाया-ऽऽतवे इय।
वन्न गंध रसा फासा,
पुग्गलाणं तु लक्खणं ॥११॥

शब्द, अन्धकार, रत्नादिका उद्योत, चन्द्रादिकी प्रभा, छाया और सूर्यादिका आतप, ये पुद्गल हैं, अथवा जिस में वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श हो, उसे पुद्गल समझना चाहिये ॥ ११ ॥

पूरण-गलन, जिसका स्वभाव हो, उसे पुद्गल कहते हैं अर्थात् जो इकट्ठे होकर मिल जाते हैं और फिर जुदे जुदे हो जाते हैं, वे पुद्गल कहलाते हैं।

"अब दो गाथाओं से कालद्रव्य का स्वरूप कहते हैं।"

एगा कोडी सतसट्ठि,
लक्खा सतहुत्तरी सहस्सा य।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

दो य सया सोलहिया,
आवलिया इग मुहुत्तम्मि ॥१२॥
समयावली मुहुत्ता,
दोहा पक्खा य मास वरिसा य।
भणिओ पलिआ सागर,
उस्सप्पिणी सप्पिणी कालो ॥१३॥

एक क्रोड़, सड़सठ लाख, सतहत्तर हजार, दो सौ सोलह (१६७७७२१६) आवलिकाओं का एक 'मुहूर्त्त' होता है ॥ १२ ॥

असंख्य समयों की एक 'आवलिका' होती है।

जिसका विभाग न हो सके ऐसे अतिसूक्ष्म कालको 'समय' कहते हैं। तीस मुहूर्त्तों का अहोरात्ररूप एक 'दिन' होता है। पन्द्रह दिनों का एक 'पक्ष'। दो पक्षों का एक 'मास'। बारह महीनों का एक 'वर्ष'। असंख्य वर्षों का एक 'पल्योपम'। दस क्रोड़ाक्रोड़ी पल्योपम का एक 'सागरोपम'। दस क्रोड़ाक्रोड़ो सागरोपम की एक 'उत्सर्पिणी'। दूसरे दस क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम की एक 'अवसर्पिणी' ॥ १३ ॥

उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी मिलकर एक 'कालचक्र'

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

होता है। ऐसे अनन्त कालचक्र बीतने पर एक 'पुद्गल-परावर्त' होता है। क्रोड़ाक्रोड़ी-क्रोड़को क्रोड़ से गुणने पर जो संख्या होती है उसे 'क्रोड़ाक्रोड़ी' कहते हैं।

"छह द्रव्यों का विशेष स्वरूप कहते हैं।"

परिणामि जीव मुत्तं,
सपएसा एग खित्त किरिश्रा य।
णिच्चं कारण कत्ता,
सव्वगय इयरअप्पवेसे ॥१४॥

जीव, पुद्गल, धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय और काल-ये छह द्रव्य हैं। इनमें से जीव और पुद्गल. ये दो परिणामी हैं; जीव चेतन द्रव्य है; पुद्गल मूर्त्त हैं; जीव, पुद्गल धर्म, अधर्म और आकाश ये पाँच द्रव्य प्रदेश सहित हैं; धर्म, अधर्म और आकाश-ये तीन, एक एक हैं; आकाश क्षेत्र है; जीव और पुद्गल सक्रिय हैं; धर्म, अधर्म, आकाश, और काल नित्य हैं; धर्म अधर्म, आकाश काल और पुद्गल, कारण हैं; जीव कर्ता है; आकाश सर्वगत-अर्थात् लोक-अलोक व्यापी है, और छहों द्रव्य प्रवेश रहित हैं-अर्थात् एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का स्वरूप नहीं धारण करता ॥ १४ ॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

विशेष—परिणाम दो प्रकार के होते हैं,—स्वभाव परिणाम और विभाव परिणाम। अन्यद्रव्य के निमित्त से होने वाला विरूप परिणाम, विभाव परिणाम कहलाता है, जैसे—जीवके निमित्त से पुद्गल, कर्म के स्वरूप में बदल जाते हैं, और पुद्गल के निमित्त से जीवका ज्ञान, अज्ञान के रूप में बदल जाता है। विभाव परिणाम की अपेक्षा से जीव और पुद्गल परिणामी हैं, अन्य द्रव्य नहीं क्योंकि उनमें स्वभावपरिणाम ही होता है, विभावपरिणाम नहीं होता।

द्रव्यप्राण और भावप्राणों को जीवद्रव्य ही धारण करता है अतएव अन्य पांच द्रव्य, निर्जीव हैं।

इन्द्रियों के द्वारा ग्रहण किये जाने की योग्यता जिस द्रव्य में हो, उसे मूर्त समझना चाहिये। अथवा, जिसमें रूप, रस, गन्ध और स्पर्श हो उसे मूर्त कहते हैं। पुद्गल द्रव्य को छोड़, अन्य पाँच द्रव्य अमूर्त हैं।

काल द्रव्य को छोड़, अन्य पाँच द्रव्य, प्रदेशवाले हैं। जीव, धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय के—प्रत्येक के असंख्य प्रदेश हैं। सामान्य रूप से आकाश के अनन्त प्रदेश हैं परन्तु लोकाकाश के असंख्य प्रदेश हैं। पुद्गल-द्रव्य संख्यात प्रदेशोंवाला, असंख्यात प्रदेशोंवाला और अनन्त प्रदेशोंवाला होता है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

आकाश द्रव्य, अन्य द्रव्यों को अवकाश देता है, इसलिये वही एक क्षेत्र कहलाता है। और अन्य द्रव्य क्षेत्री कहलाते हैं।

एक जगह से दूसरी जगह जाना यह क्रिया है। जीव और पुद्गल को छोड़ अन्य द्रव्यों में क्रिया नहीं है इस लिये जीव और पुद्गल सक्रिय, और अन्य द्रव्य निष्क्रिय कहलाते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश और काल—इन चार द्रव्यों में विभावपरिणाम नहीं होता इसलिये ये नित्य और जीव तथा पुद्गल में विभावपरिणाम होता है इसलिये ये दोनों अनित्य हैं। नयवाद को लेकर जीवको अनित्य कहा है, अन्यथा, जैन-सिद्धान्त सब द्रव्यों को नित्यानित्य कहता है।

जीवके शरीर-इन्द्रिय आदि के बनने में कारण, पुद्गल है; जीवके गमन में कारण, धर्मास्तिकाय है; जीवके स्थिर होने में कारण, अधर्मास्तिकाय है; जीवकी वर्तना में कारण, काल है। इस लिये ये पाँचों द्रव्य, कारण हैं; और जीव द्रव्य अकारण है, क्योंकि जीव से उन पाँचों द्रव्यों का कोई उपकार नहीं होता।

॥ अजीव तत्त्व समाप्त ॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

पुण्यतत्त्व ।

सा उच्चगोअ मणुदुग,
सुरदुग पंचेंदिजाइ पणदेहा ।
आइतितणूणुवंगा,
आइमसंघयणसंठाणा ॥ १५ ॥

"इस गाथा में तथा आगे की दो गाथाओं में पुण्य तत्त्व के बयालीस भेद कहे हैं ।"

सातावेदनीय, उच्चगोत्र, मनुष्यगति, मनुष्यानुपूर्वी, देवगति, देवानुपूर्वी, पञ्चेन्द्रियजाति, औदारिक शरीर, वैक्रिय शरीर, आहारक शरीर, तैजस शरीर, कार्मण शरीर, प्रथम के तीन शरीरों के अंग, उपांग और अंगोपांग, प्रथम संहनन और प्रथम संस्थान ॥ १५ ॥

(१) जिस कर्म से जीव सुख का अनुभव करे, उसे 'सातावेदनीय' कहते हैं ।

(२) जिस कर्म से जीव उच्चकुल में पैदा हो, उसे 'उच्चैर्गोत्र' कहते हैं ।

(३) जिस कर्म से जीव को मनुष्यगति मिले उसे 'मनुष्यगति' कहते हैं ।

(४) जिस कर्म से मनुष्य की आनुपूर्वी मिले उसे 'मनुष्यानुपूर्वी' कहते हैं । आनुपूर्वी का मतलब यह है कि

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

जैसे टेढ़े चलते हुए बैल को नथनी डाल कर सीधे चलाने में आता है वैसे ही विग्रहगति से दूसरी गति में जाने वाला जीव जब शरीर छोड़ कर समश्रेणि से जाने लगता है तब आनुपूर्वी कर्म उस जीवको जबरदस्ती से, जहां पैदा होना हो, वहाँ पहुँचा देता है। मनुष्य गति कर्म और मनुष्यानुपूर्वीकर्म दोनों को 'मनुष्यद्विक' संज्ञा है।

(५) जिस कर्म से जीव को देवगति मिले, उसे 'देवगति' कहते हैं।

(६) जिस कर्म से जीव को देवता की आनुपूर्वी प्राप्त हो, उसे देवानुपूर्वी कहते हैं।

(७) जिस कर्म से जीवको पांचों इन्द्रियां मिलें, उसे 'पञ्चेन्द्रिय जातिकर्म' कहते हैं।

(८) जिस कर्म से जीव को औदारिक शरीर मिले उसे 'औदारिककर्म' कहते हैं। उदार अर्थात् बड़े बड़े अथवा तीर्थंकरादि उत्तम पुरुषों की अपेक्षा उदार-प्रधान पुद्गलों से जो शरीर बनता है उसे 'औदारिक' कहते हैं। मनुष्य पशु पक्षी आदि का शरीर औदारिक कहलाता है।

(९) जिस कर्म से वैक्रिय शरीर मिले उसे 'वैक्रियकर्म' कहते हैं। अनेक प्रकार की क्रियाओं से बना हुआ शरीर, 'वैक्रिय' कहलाता है। उसके दो भेद हैं; औपपातिक और

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

लब्धिजन्य। देवता और नरकनिवासी जीवों का शरीर 'औपपातिक' कहलाता है।

लब्धि अर्थात् सामर्थ्यविशेष प्राप्त होने पर तिर्यञ्च और मनुष्य भी कभी कभी वैक्रिय शरीर धारण करते हैं, वह 'लब्धिजन्य' है।

(१०) जिस कर्म से आहारक शरीर की प्राप्ति हो उसे 'आहारक' कर्म कहते हैं दूसरे द्वीप में विद्यमान तीर्थंकर से अपना सन्देह दूर करने के लिये या उनका ऐश्वर्य देखने के लिये जब चौदह पूर्वधारी मुनिराज चाहते हैं तब निजशक्ति से एक हाथ प्रमाण, चर्मचक्षु से अदृश्य, अति सुन्दर शरीर बनाते हैं, उस शरीर को 'आहारक शरीर' कहते हैं।

(११) जिस कर्म से तैजस शरीर की प्राप्ति हो, उसे 'तैजस' कर्म कहते हैं।

किये हुये आहार को पका कर रस, रक्त आदि बनाने वाला तथा तपोबल से तेजोलेश्या निकालने वाला शरीर 'तैजस' कहलाता है।

(१२) जीवों के साथ लगे हुए आठ प्रकार के कर्मों का विकाररूप तथा सब शरीरों का कारणरूप, 'कार्मण' शरीर कहलाता है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

तैजस शरीर और कार्मण शरीरका अनादिकाल से जीव के साथ सम्बन्ध है और मोक्ष पाये बिना उन से वियोग नहीं होता।

(१३-१५) अंग, उपांग और अंगोपांग, जिन कर्मों से मिलें उनको 'अंग' कर्म, 'उपांग' कर्म और 'अंगोपांग' कर्म कहते हैं।

जानु, भुजा, मस्तक, पीठ आदि अंग हैं, अंगुली वगैरह उपांग और अंगुलीके पर्व, रेखा आदि 'अंगोपांग' कहलाते हैं।

औदारिक, वैक्रिय और आहारक शरीरको अङ्ग, उपाङ्ग आदि होते हैं लेकिन तैजस और कार्मण शरीर को नहीं।

(१६) प्रथम संहनन—'वज्रऋषभनाराच'—जिस कर्मसे मिले, उसे 'वज्रऋषभनाराच' नामकर्म कहते हैं।

हड्डियोंकी रचनाको 'संहनन' कहते हैं। दो हाड़ोंका मर्कट बन्ध होनेपर एक पट्टा (वेठन) दोनोंपर लपेट दिया जाय फिर तीनोंपर खीला ठोका जाय, इस तरह की मजबूत हड्डियों की रचना को 'वज्रऋषभनाराच' कहते हैं।

(१७) प्रथम संस्थान—'समचतुरस्र' जिस कर्मसे मिले, उसे 'समचतुरस्र' संस्थान नामकर्म कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

पालथी मारकर बैठने से दोनों जानु (घुटने) और दोनों कन्धों का इसी तरह बायें जानु और दाहिने कन्धे का तथा दक्षिण जानु और वामस्कन्ध का अन्तर समान हो, तो उस संस्थान को 'समचतुरस्र' संस्थान कहते हैं। जिनेश्वर भगवान् तथा देवताओं का यही संस्थान है।

वण्ण चउक्का ऽगुरुलहु,
परघा ऊसास आयवुज्जोअं।
सुभखगइ निमिण तसदस,
सुर-नर-तिरिआउ तित्थयरं ॥१६॥

वर्णचतुष्क (वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श), अगुरुलघु, पराघात, श्वासोच्छ्वास, आतप, उद्योत, शुभविहायोगति, निर्माण, त्रसदशक, सुरायुष्य, मनुष्यायुष्य, तिर्यश्चायुष्य और तीर्थङ्कर नामकर्म ॥ १६ ॥

(१८–२१) जिन कर्मों से जीवका शरीर, शुभवर्ण, शुभगन्ध, शुभरस और शुभस्पर्शवाला हो, उन कर्मों को 'वर्णचतुष्क' नामकर्म कहते हैं।

लाल, पीला और सफेद रंग, शुभ वर्ण कहलाता है। सुगन्ध-खुशबूको शुभगन्ध कहते हैं। खट्टा, मीठा और

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

कसैला रस, शुभ रस कहलाता है। लघु, मृदु (कोमल), उष्ण और स्निग्ध (चिकने) स्पर्शको शुभ स्पर्श कहते हैं।

(२२) जिस कर्म से जीवका शरीर न लोहे जैसा भारी हो, न आँक की कपास जैसा हलका हो किन्तु मध्यम हो उसे 'अगुरुलघु' नामकर्म कहते हैं।

(२३) जिस कर्म से जीव, बलवानों से पराजित न हो, उसे 'पराघात' नामकर्म कहते हैं।

(२४) जिस कर्मसे जीव श्वासोच्छ्वास ले सके उसे, 'श्वासोच्छ्वास' नामकर्म कहते हैं।

(२५) जिस कर्मसे जीवका शरीर, उष्ण न होकर भी उष्ण प्रकाश करे उसे 'आतप' नामकर्म कहते है। सूर्यमण्डल में रहने वाले पृथ्वीकाय जीवों का शरीर ऐसा ही होता है।

(२६) जिस कर्म से जीवका शरीर शीतल प्रकाश करनेवाला हो, उसे 'उद्योत' नामकर्म कहते हैं। ऐसे जीव, चन्द्रमण्डल और ज्योतिश्चक्र में होते हैं। वैक्रिय लब्धिसे साधु, वैक्रिय शरीर धारण करते हैं, उस शरीर का प्रकाश शीतल होता है, वह इस उद्योत नामकर्म से समझना चाहिये।

(२७) जिस कर्मसे जीव हाथी, हंस, बैल जैसी चाल चले, उसे 'शुभविहायोगति' नामकर्म कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(२८) जिस कर्मसे जीवके शरीरके अवयव, नियत-स्थानमें व्यवस्थित हों उसे 'निर्माण' नामकर्म कहते हैं।

जैसे कारीगर, मूर्ति में यथायोग्य स्थानों में अवयवों को बनाता है वैसे ही 'निर्माण' नामकर्म भी अवयवों को व्यवस्थित करता है।

(२९–३८) त्रसदशकका विचार आगे की गाथा में कहा जायगा।

(३९–४१) जिन कर्मों से जीव देव, मनुष्य और तिर्यञ्च की योनि में जीता है, उनको क्रम से 'देवायु', 'मनुष्यायु' और 'तिर्यञ्चायु' नामकर्म कहते हैं।

(४२) जिस कर्मसे जीव, चौतीस अतिशयों से युक्त होकर त्रिभुवनका पूजनीय होता है, उसे 'तीर्थङ्कर' नाम कर्म कहते हैं।

———

तस बायर पज्जत्तं,
पत्तेअ थिरं सुभं च सुभगं च।
सुस्सर आइज्ज जसं,
तसाइदसगं इमं होइ ॥ १७ ॥

"इस गाथा में त्रसदशकका वर्णन है"

(१) जिस कर्मसे जीवको 'त्रस' शरीर मिले उसे

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

'त्रस' नामकर्म कहते हैं। त्रस जीव वे हैं, जो धूप से व्याकुल होने पर छाया में और शीत से दुखी होने पर धूप में जा सकें। द्वीन्द्रियादि जीव त्रस कहलाते हैं।

(२) जिस कर्म से जीवका शरीर या शरीर-समुदाय देखने में आसके इतना स्थूल हो, उसे 'बादर' नामकर्म कहते हैं।

(३) जिसके उदयसे जीव अपनी पर्याप्तियों से युक्त हो, उसे 'पर्याप्त' नामकर्म कहते हैं।

(४) जिस कर्मसे एक शरीरमें एक ही जीव स्वामी रहे, उसे 'प्रत्येक' नामकर्म कहते हैं।

(५) जिस कर्मसे जीवके दांत, हड्डी आदि अवयव मजबूत हों, उसे 'स्थिर' नामकर्म कहते हैं।

(६) जिस कर्मसे जीवकी नाभिके ऊपरका भाग शुभ हो, उसे 'शुभ' नामकर्म कहते हैं।

(७) जिस कर्मसे जीव, सबका प्रियपात्र हो, उसे 'सौभाग्य' नामकर्म कहते हैं।

(८) जिस कर्मसे जीवका स्वर [आवाज] कोयल की तरह मधुर हो, उसे 'सुस्वर' नामकर्म कहते हैं।

(९) जिस कर्मसे जीव का वचन लोगों में आदरणीय हो, उसे 'आदेय' नामकर्म कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(१०) जिस कर्मसे लोगोंमें यश और कीर्ति फैले, उसे 'यशः कीर्ति' नामकर्म कहते हैं ॥१७॥

पापतत्त्व ।

नाणंतरायदसगं,
नव बीए नीअऽसाय मिच्छत्तं ।
थावरदस नरयतिगं
कसायपणवीस तिरियदुगं ॥१८॥

"इस गाथा में तथा आगे की दो गाथाओं में पापतत्त्व के बयासी भेद कहे जाते हैं ।"

ज्ञानावरणीयके पांच भेद और अन्तराय के पाँच भेद मिलाकर दस भेदः—१ मतिज्ञानावरणीय, २ श्रुतज्ञानावरणीय, ३ अवधिज्ञानावरणीय, ४ मनः पर्यवज्ञानावरणीय, ५ केवलज्ञानावरणीय; ६ दानान्तराय, ७ लाभान्तराय, ८ भोगान्तराय, ९ उपभोगान्तराय, १० वीर्यान्तराय; दर्शनावरणीय कर्मके नव भेद – ११ चक्षुर्दर्शनावरणीय, १२ अचक्षुर्दर्शनावरणीय, १३ अवधिदर्शनावरणीय, १४ केवलदर्शनावरणीय, १५ निद्रा, १६ निद्रानिद्रा, १७ प्रचला, १८ प्रचलाप्रचला, १९

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

सत्यानर्द्धि, २० नीचैर्गोत्र, २१ असातावेदनीय, २२ मिथ्यात्वमोहनीय; स्थावरदशक— २३ स्थावर, २४ सूक्ष्म, २५ अपर्याप्त, २६ साधारण, २७ अस्थिर २८ अशुभ, २९ दुर्भग, ३० दुःस्वर, ३१ अनादेय और ३२ अयशःकीर्ति; नरकत्रिक—३३ नरकायु, ३४ नरकगति और ३५ नरकानुपूर्वी; पच्चीस कषाय— ३६ अनन्तानुबन्धी क्रोध, ३७ अ० मान, ३८ अ० माया, ३९ अ० लोभ, ४० अप्रत्याख्यान क्रोध, ४१ अप्र० मान, ४२ अप्र० माया, ४३ अप्र० लोभ; ४४ प्रत्याख्यान क्रोध, ४५ प्र० मान, ४६ प्र० माया, ४७ प्र० लोभ; ४८ संज्वलनक्रोध, ४९ सं० मान, ५० सं० माया, ५१ सं० लोभ; ५२ हास्य, ५३ रति, ५४ अरति, ५५ शोक, ५६ भय, ५७ जुगुप्सा, ५८ स्त्रीवेद, ५९ पुरुषवेद, ६० नपुन्सकवेद, तिर्यञ्चद्विक;—६१ तिर्यञ्चगति और ६२ तिर्यञ्चानुपूर्वी ॥ १३ ॥

(१) मन और पांच इन्द्रियोंके सम्बन्धसे जीवको जो ज्ञान होता है उसे मतिज्ञान कहते हैं, उस ज्ञानका आवरण अर्थात् आच्छादन, 'मतिज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है ।

(२) शास्त्रको द्रव्यश्रुत' कहते हैं और उसके सुनने या पढ़नेसे जो ज्ञान होता है उसे 'भावश्रुत' कहते हैं, उसका

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

आवरण, 'श्रुतज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

(३) अतीन्द्रिय अर्थात् इन्द्रियों की सहायता के बिना आत्मा को रूपी द्रव्य का जो ज्ञान होता है, उसे अवधिज्ञान कहते हैं, उसका आवरण, 'अवधिज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

(४) संज्ञी पंचेन्द्रियके मन की बात जिस ज्ञानसे मालूम होती है, उसे मनः पर्यवज्ञान कहते हैं, उसका आवरण, 'मनः पर्यवज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

(५) सारे संसारका पूरा ज्ञान जिससे होता है उसे केवलज्ञान कहते हैं, उसका आवरण, 'केवलज्ञानावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

(६) दान से लाभ होता है, उसे जानता हो, पासमें धन हो, सुपात्र भी मिल जावे, लेकिन दान न कर सके, इसका कारण, 'दानान्तराय' पापकर्म है।

(७) दान देनेवाला उदार है, उसके पास दान की चीजें भी मौजूद हैं; लेनेवाला भी हुशियार है, तो भी मांगी हुई चीज न मिले, इसका कारण, 'लाभान्तराय' पापकर्म है।

(८) भोग्य चीजें मौजूद हैं; भोगने की शक्ति भी है लेकिन नहीं भोग सके; उसका कारण, 'भोगान्तराय' पापकर्म है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(९) उपभोग्य चीजें मौजूद हैं, उपभोग करने की शक्ति भी है लेकिन उपभोग नहीं ले सके, उसका कारण 'उपभोगान्तराय' पापकर्म है।

जो चीज़ एकबार भोगनेमें आवे वह भोग्य; जैसे—पुष्प, फल, भोजन आदि। जो पदार्थ बारबार भोगने में आवे उसे उपभोग्य कहते हैं, जैसे—स्त्री, वस्त्र, आभरण आदि।

(१०) रोगरहित युवावस्था रहते और सामर्थ्य रहते हुए भी अपनी शक्तिका विकास न कर सके, उसका कारण, 'वीर्यान्तराय' पापकर्म है।

(११) आँख से पदार्थों का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे 'चक्षुर्दर्शन' कहते हैं, उसका आवरण, 'चक्षुर्दर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

पदार्थ के सामान्य ज्ञान को दर्शन कहते हैं और विशेष ज्ञान को ज्ञान।

(१२) कान, नाक, जीभ, त्वचा तथा मनके सम्बन्ध से शब्द, गन्ध, रस और स्पर्श का जो सामान्य ज्ञान होता है उसे 'अचक्षुर्दर्शन' कहते हैं, उसका आवरण, 'अचक्षुर्दर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

(१३) इन्द्रियों की सहायता के बिना रूपी द्रव्यका जो

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

सामान्य बोध होता है उसे 'अवधिदर्शन' कहते हैं उसका आवरण, 'अवधिदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

(१४) संसार के सम्पूर्ण पदार्थोंका जो सामान्य अवबोध होता है, उसे 'केवलदर्शन' कहते हैं, उसका आवरण 'केवलदर्शनावरणीय' पापकर्म कहलाता है।

(१५) जो सोया हुआ आदमी जरासी खटखटाहटसे या आवाज़से जाग जाता है। उसकी नींदको 'निद्रा' कहते हैं, जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे उस कर्मका भी नाम 'निद्रा' है।

(१६) जो आदमी, बड़े जोरसे चिल्लाने या हाथ से ज़ोरसे हिलाने पर बड़ी मुश्किलसे जागता है, उसकी नींदको 'निद्रानिद्रा' कहते हैं, जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे उस कर्मका भी नाम 'निद्रानिद्रा' है।

(१७) खड़े खड़े या बैठे बैठे जिसको नींद आती है, उसकी नींद को प्रचला कहते हैं, जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे, उस कर्मका भी नाम 'प्रचला' है।

(१८) चलते फिरते जिसको नींद आती है, उसकी नींदको 'प्रचलाप्रचला' कहते हैं, जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे, उसका भी नाम 'प्रचलाप्रचला' है।

(१९) दिनमें सोचे हुये काम को रातमें नींदकी

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

हालतमें जो कर डालता है, उसकी नींद को 'स्त्यानर्द्धि' कहते हैं, जिस कर्मसे ऐसी नींद आवे, उस कर्मको भी 'स्त्यानर्द्धि' कहते हैं।

स्त्यानर्द्धिकी हालतमें वज्रऋषभनाराचसंहननवाले जीवको वासुदेव का आधा बल होता है।

(२०) जिस कर्मसे नीच कुलमें जन्म हो, उसे 'नीचैर्गोत्र' पापकर्म कहते हैं।

(२१) जिस कर्मसे जीव, दुःखका अनुभव करे, उसे 'असातावेदनीय' पापकर्म कहते हैं।

(२२) जिस कर्मसे मिथ्यात्वकी प्राप्ति हो उसे 'मिथ्यात्वमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

मिथ्यात्वका लक्षण यह है, 'अदेवे देवबुद्धिर्या, गुरुधीरगुरौ च या। अधर्मे धर्मबुद्धिश्च, मिथ्यात्वं तन्निगद्यते ॥' देवताके गुण जिसमें न हो उसे देव समझना, गुरुके गुण जिसमें न हों उसे गुरु मानना और अधर्मको धर्म समझना, यह मिथ्यात्व है।

(२३–३२) स्थावरदशकका वर्णन आगेकी गाथा में आवेगा।

(३३) जिस कर्मसे जीव नरकमें जाता है, उसे 'नरकगति' पापकर्म कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(३४) जिस कर्मसे जीव नरकमें जीता है, उसे 'नरकायु' पापकर्म करते हैं।

(३५) जिस कर्मसे जीवको जबरदस्ती नरकमें जाना पड़े, उसे 'नरकानुपूर्वी' पापकर्म कहते हैं।

(३६-३९) जिस कर्मसे जीवको अनन्तकाल तक संसारमें घूमना पड़ता है, उसे 'अनन्तानुबन्धी' पापकर्म कहते हैं। इसके चार भेद हैं; अनन्तानुबन्धी क्रोध, अनन्तानुबन्धी मान, अन० माया और अन० लोभ। जबतक जीव जीता है तबतक प्रायः ये बने रहते हैं और अन्तमें प्रायः नरकगति प्राप्त होती है।

(४०-४३) जिस कर्मसे जीवको देशविरतिरूप प्रत्याख्यानकी प्राप्ति न हो, उसे 'अप्रत्याख्यान' पापकर्म कहते हैं। इसके भी चार भेद हैं; अप्रत्याख्यान क्रोध, अप्रत्याख्यान मान, अ० माया और अ० लोभ। इनकी स्थिति एक वर्षकी है, इनके उदयसे अणुव्रत धारण करने की इच्छा नहीं होती और मरने पर प्रायः 'तिर्यञ्चगति' मिलती है।

(४४-४७) जिसके उदयसे सर्वविरतिरूप प्रत्याख्यान की प्राप्ति न हो, उसे 'प्रत्याख्यान पापकर्म कहते हैं।

इसके चार भेद हैं:—प्रत्याख्यान क्रोध, प्रत्याख्यान

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

मान, प्र० माया और प्र० लोभ । इनकी स्थिति चार महीनेकी है; ये पापकर्म, सर्वविरतिरूप चारित्रके प्रतिबन्धक हैं और मृत्यु होने पर प्रायः मनुष्यगति मिलती है।

(४८-५१) जिस कर्मसे यथाख्यातचारित्रकी प्राप्ति न हो, उसे 'सञ्ज्वलन' पापकर्म कहते हैं।

इसके भी चार भेद हैं; सञ्ज्वलन क्रोध, सं० मान, सं० माया और सं० लोभ । इनकी स्थिति पंद्रह दिनों की है और मृत्यु होने पर देवगति प्राप्त होती है।

(५२) जिस कर्मसे, बिनाकारण या कारणवश हँसी आवे, उसे 'हास्यमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

(५३) जिस कर्मसे अच्छे अच्छे पदार्थोंमें अनुराग हो, उसे 'रतिमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

(५४) जिस कर्मसे, बुरी चीजोंसे नफरत हो, उसे 'अरतिमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

(५५) जिन कर्मसे इष्ट वस्तुका वियोग होने पर शोक हो, उसे 'शोकमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

(५६) जिस कर्मसे, बिनाकारण या कारणवश दिलमें भय हो, उसे 'भयमोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

(५७) जिस कर्मसे दुर्गन्धी या बीभत्स पदार्थों को देखकर घृणा हो, उसे 'जुगुप्सामोहनीय' पापकर्म कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(५८-६०) स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुन्सकवेदका मतलब पहले लिखा जा चुका है।

(६१) जिस कर्मसे तिर्यञ्चगति मिले, उसे 'तिर्यञ्चगति' पापकर्म कहते हैं।

(६२) जिस कर्मसे जीवको जबरदस्ती तिर्यञ्चगतिमें जाना पड़े, उसे 'तिर्यञ्चानुपूर्वी' पापकर्म कहते हैं।

इग-बि-ति-चउजाईओ,
कुखगइ उवघाय हुंति पावस्स।
अपसत्थं वगणचउ,
अपढमसंघयण-संठाणा ॥ १६ ॥

एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय जातिकर्म, अशुभविहायोगति नामकर्म, उपघातकर्म, अप्रशस्त वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श, अप्रथम संहनन अर्थात् ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका और सेवार्त संहनन, अप्रथम संस्थान अर्थात् न्यग्रोध, सादि, कुब्ज, वामन और हुंडक संस्थान। ये बयासी भेद पापतत्त्वके हैं ॥ १६ ॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(६३) जिस कर्मसे जीवको एकेन्द्रिय जाति मिले, उसे 'एकेन्द्रियजाति' पापकर्म कहते हैं इसी प्रकारः—

(६४) द्वीन्द्रिय, (६५) त्रीन्द्रिय, और (६६) चतुरिन्द्रियजाति पापकर्मों का समझना चाहिये।

(६७) जिस कर्म से जीव, ऊंट या गधे जैसा चले, उसे 'अशुभविहायोगति' पापकर्म कहते हैं।

६८) जिस कर्म से जीव अपने ही अवयवों से दुखी हो, उसे 'उपघात' पापकर्म कहते हैं। वे अवयव प्रति-जिह्वा [पडजीभ], कण्ठमाला, छठी अंगुली आदि हैं।

(६९–७२) जिन कर्मों से जीव का शरीर अशुभ वर्ण अशुभ रस और अशुभ स्पर्श वाला हो, उनको क्रमसे 'अप्रशस्तवर्ण' 'अप्रशस्तगन्ध' 'अप्रशस्तरस' और 'अप्रशस्तस्पर्श' पापकर्म कहते हैं।

नील और कृष्णवर्ण अशुभ वर्ण हैं। दुर्गंध, अशुभ गन्ध। गुरु, कर्कश, रूक्ष और शीत स्पर्श, अशुभ स्पर्श। तिक्त और कटु रस, अशुभ रस हैं।

(७३–७७) जिन कर्मोंसे अन्तिम पांच संहननोंकी प्राप्ति हो, उन्हें 'अप्रथमसंहनन' नाम पापकर्म कहते हैं।

पांच संहनन ये हैंः—ऋषभनाराच, २ नाराच, ३ अर्धनाराच, ४ कीलिका और ५ सेवार्त्त।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

१—हड्डियों को सन्धिमें दोनों ओरसे मर्कटबन्ध और उनपर लपेटा हुआ पट्टा हो लेकिन खील ना हो, वह 'ऋषभनाराच' संहनन है।

२—दोनों ओर सिर्फ मर्कटबन्ध हो, वह 'नाराच'।

३ एक ओर मर्कटबन्ध और दूसरी तरफ खीला हो, तो 'अर्धनाराच'।

४—मर्कटबन्ध न होकर सिर्फ खीले से ही हड्डियां जुड़ी हों, तो कीलिका'।

५—खीला न होकर इसी तरह हड्डियां आपस में जुड़ी हों; तो 'सेवार्त'।

(७८–८२) जिनकर्मों से अन्तिम पांच संस्थानोंकी प्राप्ति हो; उन्हें अप्रथमसंस्थान' नाम पापकर्म कहते हैं।

पांच संस्थान ये हैं:—१ न्यग्रोधपरिमण्डल; २ सादि; ३ कुब्ज; ४ वामन और ५ हुँड।

१—बड़के वृक्षको न्यग्रोध कहते हैं, वह जैसे ऊपर पूर्ण और नीचे हीन होता है, वैसे ही, जिस जीव के नाभिका ऊपरी भाग पूर्ण नीचे का हीन हो, तो 'न्यग्रोधपरिमण्डल' संस्थान समझना चाहिये।

२—नाभिके नीचे का भाग पूर्ण और ऊपर का हीन हो, तो 'सादि'।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

३—हाथ, पैर, सिर आदि अवयव ठीक हों और पेट तथा छाती हीन हो तो, 'कुब्ज'।

४—छाती और पेटका परिमाण ठीक हो और हाथ पैर सिर आदि छोटे हों, तो, 'वामन'।

५—शरीरके सब अवयव हीन हों, तो, 'हुँड'।

थावरसुहुमअपज्जं,
साहारणमथिरमसुभदुभगाणि।
दुस्सरणाइज्जजसं,
थावरदसगं विवज्जत्थं ॥२०॥

"इस गाथा में पहले कहे हुये स्थावरदशक का वर्णन है।"

स्थावर, सूक्ष्म, अपर्याप्त, साधारण, अस्थिर, अशुभ, दुर्भग, दुःस्वर, अनादेय और अयशः कीर्ति; ये पुण्यतत्त्वमें कहे हुये त्रसदशकसे विपरीत अर्थवाले हैं ॥ २० ॥

(१) जिस कर्मसे स्थावर शरीर की प्राप्ति हो, उसे 'स्थावर' नामकर्म कहते हैं। स्थावर शरीरवाले एकेन्द्रिय जीव, गरमी या सर्दीसे, चल फिर न सकने के कारण अपना बचाव नहीं कर सकते।

(२) जिस कर्मसे आंखसे नहीं देखने योग्य शरीर मिले उसे 'सूक्ष्म' नामकर्म कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

निगोदके जीव, सूक्ष्म शरीरवाले होते हैं।

(३) जिस कर्मसे अपनी पर्याप्तियां पूरी किये बिना ही जीव मर जावे, उसे 'अपर्याप्त' नामकर्म कहते हैं।

(४) जिस कर्मसे अनन्त जीवों को एक शरीर मिले, उसे 'साधारण' नामकर्म कहते हैं। जैसेः—आलू, जमीकन्द आदिके जीव।

(५) जिस कर्मसे कान, भौंह, जीभ आदि अवयव अस्थिर होते हैं; उसे 'अस्थिर' नामकर्म कहते हैं।

(६) जिस कर्मसे नाभिके नीचेका भाग अशुभ हो, उसे 'अशुभ' नामकर्म कहते हैं।

(७) जिस कर्मसे जीव किसीका प्रीतिपात्र न हो, उसे 'दुर्भग' नामकर्म कहते हैं।

(८) जिस कर्मसे जीवका स्वर सुनने में बुरा लगे, उसे 'दुःस्वर' नामकर्म कहते हैं।

(९) जिस कर्मसे जीवका वचन, लोगोंमें माननीय न हो, उसे 'अनादेय' नामकर्म कहते हैं।

(१०) जिस कर्म से लोकमें अपयश और अपकीर्ति हो, उसे 'अयशकीर्ति' नामकर्म कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

आस्रवतत्त्व ।

इंदिअ कसाय अव्वय,
जोगा पंच चउ पंच तिन्नि कमा ।
किरिआओ पणवीसं,
इमा उ ताऊ अणुक्कमसो ॥ २१ ॥

"इस गाथा में आस्रव के बयालीस भेद कहे हैं ।"

पांच इन्द्रियाँ; चार कषाय, पाँच अव्रत, तीन योग और पच्चीस क्रियायें, ये आस्रव के बयालीस भेद हैं ॥२१॥

'आस्रव के दो भेद हैं; भावास्रव और द्रव्यास्रव ।'

जीवका शुभ, अशुभ परिणाम, 'भावास्रव' कहलाता है ।

शुभ-अशुभ परिणामों को पैदा करनेवाली बयालीस प्रकारकी वृत्तियोंको 'द्रव्यास्रव' कहते हैं।

इन्द्रियाँ दो तरहकी हैं; द्रव्येन्द्रिय और भावेन्द्रिय । द्रव्येन्द्रिय पुद्गल रूप है और भावेन्द्रिय है जीव की शब्दादिको ग्रहण करने की शक्ति ।

कषाय चार हैं; – क्रोध, मान, माया और लोभ ।

पाँच अव्रत;–प्राणातिपात (हिंसा), मृषावाद (झूठ बोलना), अदत्तादान (चोरी), मैथुन और परिग्रह (मूर्च्छा)।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

तीनयोगः—मनयोग, वचनयोग और काययोग।

काइअ अहिगरणीया,
पाउसिया पारितावणी किरिया।
पाणाइवाइरंभिअ,
परिग्गहिया मायवत्तीया ॥२२॥

"इस गाथा में तथा आगे की दो गाथाओं में पचीस क्रियाओं के नाम हैं।"

कायिकी, अधिकरणिकी, प्राद्वेषिकी, पारितापनिकी, प्राणातिपातिकी, आरम्भिकी, पारिग्रहिकी, मायाप्रत्ययिकी ॥२२॥

(१) असावधानी से शरीरके व्यापार से जो क्रिया लगती है उसे 'कायिकी' कहते हैं।

(२) 'जिस क्रियासे जीव नरकमें जाने का अधिकारी होता है उसे 'अधिकरणिकी' कहते हैं। जैसे खड्ग आदिसे जीवकी हत्या करना।

(३) जीव तथा अजीवके ऊपर द्वेष करनेसे 'प्राद्वेषिकी' क्रिया लगती है।

(४) अपने आपको और दूसरों को तकलीफ पहुँचाने से 'पारितापनिकी' क्रिया लगती है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(५) दूसरोंके प्राणोंका नाश करने से 'प्राणातिपातिकी' क्रिया लगती है।

(६) खेती आदि करनेसे 'आरम्भिकी' क्रिया लगती है।

(७) धान्य वगैरहके संग्रह तथा उस पर ममता करनेसे 'पारिग्राहिकी' क्रिया लगती है।

(८) दूसरोंको ठगनेसे 'मायाप्रत्ययिकी' क्रिया लगती है।

मिच्छादंसणवत्ती,
अप्पच्चक्खाणी य दिट्ठी पुट्ठी अ।
पाडुच्चिअ सामंतो,
वणीअ नेसत्थि साहत्थि ॥२३॥

मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी, अप्रत्याख्यानिकी, दृष्टिकी, स्पृष्टिकी, प्रातीत्यकी, सामंतोपनिपातिकी, नैशस्त्रिकी, स्वहस्तिकी ॥ २३ ॥

(९) जिनेन्द्रवचनसे विपरीत मिथ्यादर्शनसे 'मिथ्यादर्शनप्रत्ययिकी' क्रिया लगती है।

(१०) संयमके विघातक कषायोंके उदयसे प्रत्याख्यान न करना उससे 'अप्रत्याख्यानिकी' क्रिया लगती है।

(११) रागादिकलुषित चित्तसे पदार्थोंको देखनेसे 'दृष्टिकी' क्रिया लगती है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(१२) रागादिकलुषित चित्तसे स्त्री आदिके अंगका स्पर्श करनेसे 'स्पृष्टिकी' क्रिया लगती है।

(१३) जीवादि पदार्थोंको लेकर कर्मबन्धनसे जो क्रिया लगती है उसे 'प्रातीत्यकी' कहते हैं।

(१४) अपना वैभव देखनेके लिये आये हुये लोगों की वैभवविषयक प्रशंसा सुनकर खुश होनेसे तथा घी तेल आदिके खुले बर्तनोंमें त्रस जीवोंके गिरनेसे जो क्रिया लगती है उसे 'सामन्तोपनिपातिकी' कहते हैं।

(१५) राजा आदिके हुक्मसे यन्त्र, हथियार आदिके बनाने तथा खींचने आदिसे जो क्रिया लगती है उसे 'नैशस्त्रिकी' कहते हैं।

(१६) हिरन, खरगोश आदि जीवोंको शिकारी कुत्तों से मरवाने या खुद मारनेसे जो क्रिया लगती है उसे 'स्वहस्तिकी' कहते हैं।

आणवणि विआरणिआ,
अणभोगा अणवकंखपच्चइआ।
अन्ना पओग समुदाण,
पिज्ज दोसेरिआवहिआ ॥२४॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

आनयनिकी, वैदारणिकी, अनाभोगिकी, अनवकांचाप्रत्ययिकी, प्रायोगिकी, सामुदायिकी, प्रेमिकी, द्वेषिकी और ऐर्यापथिकी। इन पच्चीस क्रियाओंसे कर्मका आस्रव होता है ॥ २४ ॥

(१७) जीव तथा जड़ पदार्थोंको किसीके हुक्मसे या खुद लाने लेजानेसे जो क्रिया लगती है उसे 'आनयनिकी' कहते हैं।

(१८) जीव और जड़ पदार्थोंको चीरने फाड़नेसे जो क्रिया लगती है, उसे 'वैदारणिकी' कहते हैं।

(१९) बेपर्वाहीसे चीजोंके उठाने रखने तथा चलने फिरनेसे जो क्रिया लगती है, उसे 'अनाभोगिकी' कहते हैं।

(२०) इस लोक तथा परलोकके विरुद्ध आचरण करनेसे 'अनवकाङ्क्षाप्रत्ययिकी' क्रिया लगती है।

(२१) मन, वचन और शरीरके अयोग्य व्यापारसे 'प्रायोगिकी' क्रिया लगती है।

(२२) किसी महापापसे आठों कर्मोंका समुदितरूपसे बन्धन हो, तो 'सामुदायिकी' क्रिया लगती है।

(२३) माया और लोभ करनेसे जो क्रिया लगती है उसे 'प्रेमिकी' कहते हैं।

(२४) क्रोध और मानसे 'द्वेषिकी' क्रिया लगती है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(२५) सिर्फ शरीरव्यापारसे जो क्रिया लगती है उसे 'ऐर्यापथिकी' कहते हैं।

यह क्रिया अप्रमत्त साधु तथा सयोगी केवलीको भी लगती है।

संवरतत्त्व।

समिई गुत्ति परीसह,
जइधम्मो भावणा चरित्ताणि।
पण ति दुवीस दस बार,
पंच भेएहिं सगवन्ना ॥२५॥

"इस गाथा में संवरके सत्तावन भेद गिनाये हैं"

पाँच समिति, तीन गुप्ति, बाईस परीसह, दस प्रकार, का यतिधर्म, बारह भावना और पाँच प्रकारका चारित्र, ये संवरके सत्तावन भेद हैं ॥२५॥

संवरके दो भेद हैं; द्रव्यसंवर और भावसंवर। आते हुये नवीन कर्मको रोकनेवाले आत्माके परिणामको 'भावसंवर' कहते हैं और कर्मपुद्गलकी रुकावटको 'द्रव्यसंवर' कहते हैं।

आर्हतधर्मके अनुसार जो चेष्टाविशेष, उसे 'समिति' कहते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

पांच समितियों के और तीन गुप्तियों के नाम।

इरिया भासेसणादाणे,
उच्चारे समिईसुत्र।
मणगुत्ति वयगुत्ति,
कायगुत्ति तहवे अ ॥२६॥

ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदान निक्षेपसमिति, और पारिष्ठापनिका समिति, ये पांच समितियाँ हैं। मनगुप्ति वचनगुप्ति और कायगुप्ति, ये तीन गुप्तियाँ हैं।

सम्यक् चेष्टाको समिति कहते हैं, और मन वचन और कायाके अशुभ व्यापारों को रोकना गुप्ति कहलाता है।

(१) कोई जीव पैरसे न दब जाय इस प्रकार राहमें सावधानीसे चलना, उसे 'ईर्यासमिति' कहते हैं।

(२) निर्दोष भाषा बोलनेको 'भाषासमिति' कहते हैं।

(३) निर्दोष आहार जो बयालीस दोषोंसे रहित होता है, उसको लेना, 'एषणासमिति' कहते हैं।

(४) दृष्टिसे देखके और रजोहरणसे प्रमार्जन करके चीजों का उठाना और रखना, 'आदाननिक्षेप समिति' कहलाती है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(५) कफ, मूत्र, मल आदिको जीवरहित जगह में छोड़ना, 'पारिष्ठापनिका' समिति कहते हैं।

तीन गुप्ति।

(६) मनोगुप्तिके तीन भेद हैं; असत्कल्पनावियोगिनी, समताभाविनी और आत्मारामता।

आर्त्त तथा रौद्र ध्यान सम्बन्धी कल्पनाओंका त्याग, असत्कल्पनावियोगिनी' सब जीवों में समान भाव, 'समताभाविनी'। केवलज्ञान होने के बाद सम्पूर्ण योगों के निरोध करने के समय 'आत्मारामता'।

(७) वचनगुप्तिके दो भेद हैं; मौनावलम्बिनी और वाङ्नियमिनी। किसी अभिप्राय को समझाने के लिये भ्रकुटि आदि से संकेत न करके मौन धारण करना, 'मौनावलम्बिनी'। बांचने और पूछने के समय मुंहके सामने 'मुखवस्त्रिका' धारण करना, 'वाङ्नियमिनी'।

(८) कायगुप्तिके दो भेद हैं; चेष्टानिवृत्ति और यथासूत्रचेष्टानियमिनी। योगनिरोधावस्था में केवली का सर्वथा शरीर चेष्टा का परिहार तथा २ कायोत्सर्ग में अनेक प्रकार के उपसर्ग होते हुए भी शरीर को स्थिर रखना, चेष्टानिवृत्ति'। साधु लोग, उठने बैठने सोने आदिमें जैन

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

सिद्धांत के मुताबिक शरीर के व्यापार को नियमित रखते हैं, उसे 'यथासूत्र चेष्टानियमिनी' कहते हैं । पांच समिति और तीन गुप्तिको 'अष्टप्रवचनमाता' कहते हैं ।

खुहा पीवासा सि उराहं,
दंसा चेलाऽरइत्थिओ ।
चरिआ निसिहिया सिज्जा,
अक्कोस वह जायणा ॥२७॥

"इस गाथामें तथा अगली गाथामें बाईस परिसहोंका वर्णन है।"

क्षुधा, पिपासा, शीत, उष्ण, दंश, चेल, अरति, स्त्री, चर्या, नैषेधिकी, शय्या, आक्रोश, वध, याचना।

धर्मकी रक्षाके लिये कर्म्मोंको निर्जरा के लिये प्राप्त हुये दुःखों को सब तरह से सहन करना, 'परिसह' कहलाता है ॥२७॥

(१) क्षुधापरिसह--क्षुधाके समान कोई चीज अधिक पीड़ा देनेवाली नहीं है । भूख से पेटकी आँतें जलने लगती हैं । कैसी भी तेज भूख लगे तो भी साधु-लोग, निर्दोष आहार जब तक नहीं मिलता है तब तक भूख की पीड़ाको सहन करते हैं । क्षुधापरिसह सब परिसहों से कड़ा है इसलिये प्रथम कहा गया ।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(२) पिपासा—जबतक अचित्त जल न मिले तबतक प्यासके वेगको सहना।

(३) शीत—कड़ी ठण्ड पड़ती हो तोभी आग जलाकर तापे नहीं, न दूसरेकी जलाई आगसे भी शीत दूर करे। अकल्पनीय वस्त्रोंकी इच्छा न करे। जो कुछ फटे पुराने वस्त्र अपने पास हों उसीसे काम निकाले और ठण्डको शान्तचित्तसे सहन करे।

(४) उष्ण—अत्यन्त गरमी पड़ती हो तोभी साधु स्नान करनेकी इच्छा न करे। छत्र धारण न करे। पंखेकी हवा न करे, गरमीको सहन करे।

(५) दंश—वर्षाऋतुमें मच्छर आदि जीवोंका बहुत उपद्रव रहता है, कायोत्सर्ग आदि धर्मक्रियाओंमें वे जन्तु काटते हैं, उसे सहन करे।

(६) अचेल—चेलका अर्थ है वस्त्र, उसका अभाव, अचेल कहलाता है। यहाँ अचेलका मतलब सर्वथा वस्त्रों-का अभाव नहीं समझना चाहिये किन्तु आगममें साधुओं को जितने वस्त्र रखनेकी आज्ञा है उतने ही रक्खे। कीमती नये वस्त्रोंकी इच्छा न करे, जो कुछ फटे पुराने वस्त्र हों उनमें सन्तोष रक्खे।

(७) अरति—अपने मनके माफिक उपाश्रय, आहार आदि न मिलनेसे दुखी न होवे।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(८) स्त्री—स्त्रियोंके अंगप्रत्यंगोंको न देखे। उनके साथ एकान्तमें बात चीत करना, हँसना आदि व्यापार न करे। मोक्षमार्गमें उन्हें अर्गलाके समान समझकर कभी कामदृष्टिसे देखे नहीं।

(९) चर्या—बहता हुआ जल और बिहार करनेवाला साधु, दोनों स्वच्छ रहते हैं इसलिये साधुको किसी एक जगह अधिक ठहरना न चाहिये। धर्मका उपदेश देते हुये अप्रतिबद्ध विहार करे।

(१०) नैषैधिकी—स्मशान, शून्यमकान, सिंहकी गुफा आदि स्थानोंमें ध्यान करनेके समय, विविध उपसर्गों के होनेपर निषिद्ध चेष्टा न करे।

(११) शय्या—जहाँ ऊँची नीची जमीन हो, धूल पड़ी हो, विस्तर दुरुस्त न हो, तो नींद में खलल पहुँचता है तौ भी मनमें उद्वेग न करे।

(१२) आक्रोश—कोई गाली देवें या कटु वचन बोले, तो उसे सहन करे।

(१३) वध—कोई दुष्ट मार पीट करे या जानसे मार डाले तौ भी साधु क्रोध न करे।

(१४) याचना—साधुको चाहिये कि यदि आहार आदि चीज, गृहस्थ लाकर अपने स्थानपर पहुँचावे तो न

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

लेवे किन्तु खुद भिक्षा माँगकर लावे। मांगनेमें कोई अपमान करे तो बुरा न माने, न भिक्षा मांगनेमें लज्जा करे।

अलाभ रोग तणफासा,
मल्ल सक्कार परीसहा।
पन्ना अन्नाण सम्मत्तं,
इअ बाविस परिसहा ॥२८॥

अलाभ, रोग, तृणस्पर्श, मल, सत्कार, प्रज्ञा, अज्ञान और सम्यक्त्व ये बाईस परीसह हैं ॥ २८ ॥

(१५) लाभान्तराय कर्मका जब उदय होता है तो मांगनेपर भी वस्तु नहीं मिलती चाहे वह चीज दाताके घरमें अधिक हो। साधु लोग निर्दोष आहार आदिकी अप्राप्तिसे उद्वेग न करें किन्तु यह समझकर कि अन्तराय कर्मका उदय है, समचित्त बने रहें। इसे 'अलाभपरिसह' कहते हैं।

(१६) रोग—ज्वर, अतिसार आदि भयङ्कर रोग होनेपर जिनकल्पी साधु चिकित्सा करानेकी इच्छा भी न करे किन्तु अपने कृतकर्मका परिपाक समझकर वेदनाको सहन करे। स्थविरकल्पी साधु आगमोक्त विधिसे निरवद्य

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

चिकित्सा करावे और कर्मफल मिल रहा है ऐसा विचार करे किन्तु वेदनाप्रयुक्त आर्तध्यान न करे।

(१७) तृणस्पर्श—रोगपीड़ित साधु, घास आदिके बिस्तरके तृणके गड़नेसे दुखी न हो किन्तु शान्तचित्तसे वेदना सहन करे।

(१८) मल—पसीनेसे शरीरमें मल बढ़ जाय, दुर्गन्ध आने लगे, तोभी स्नान करनेकी इच्छा न करे।

(१९) सत्कार—लोकसमुदाय या राजा महाराजाओं की स्तुति, वन्दना या आदर सत्कारसे साधु अपना उत्कर्ष न समझे। और न आदर-सत्कारके न पानेसे दुखी हो।

(२०) प्रज्ञा—बड़ी विद्वत्ता होनेपर भी साधु घमण्ड न करे तथा अल्प ज्ञान होनेपर भी शोक न करे।

(२१) अज्ञान—ज्ञानावरणीय कर्मके उदयसे पढ़ने में मेहनत करने पर भी विद्या हांसिल नहीं होती। साधु कभी ऐसा दुर्ध्यान न करे कि, "मैंने गृहस्थाश्रम छोड़ा, साधु बना हूं, तप जप करता हूं, पढ़ने में मेहनत करता हूं तौ भी मुझे विद्या प्राप्त नहीं होती इसलिए मुझे धिक्कार है कि साधु होकर भी मैं मूर्ख हूं" किन्तु अपने किये कर्मका फल सोचकर सन्तोष करे।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(२२) सम्यक्त्व जैनसिद्धान्त, देव, गुरु, धर्म आदि जिनोपदिष्ट पदार्थों में सन्देह न करे।

खंती मद्दव अज्जव,
मुत्ती तव संजमे अ बोधव्वे।
सच्चं सोअं आकिं—,
चणं च बंभं च जइधम्मो ॥२६॥

"इस गाथा में दस प्रकार के यति धर्म का वर्णन है।

क्षमा, मार्दव, आर्जव, मुक्ति (सन्तोष), तप, संयम, सत्य, शौच, अकिञ्चनत्व और ब्रह्मचर्य, ये दस यति के धर्म हैं ॥२६॥

सब प्राणियों पर समान दृष्टि रखने से क्रोध नहीं होता। क्रोधका न होना, 'क्षमा' कहाती है।

अहङ्कारका त्याग, 'मार्दव' कहाता है।

कपट न करना, 'आर्जव' कहाता है।

लोभ न करना 'मुक्ति' कहाती है।

इच्छाका निरोध, 'तप' कहाता है।

बाह्य और अभ्यन्तर भेद से बारह प्रकार का तप है।

प्राणातिपातादि (हिंसा आदि) का त्याग, 'संयम' कहाता है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

सच बोलना, 'सत्य' कहाता है।

किसी जीव को तकलीफ न हो ऐसा बर्ताव करना, हाथ, पैर आदि को पवित्र रखना, चोरी न करना, 'शौच' कहाता है।

सब परिग्रहों का त्याग, 'अकिंचनत्त्व' कहाता है।

मैथुन का परित्याग, ब्रह्मचर्य कहाता है।

ऊपर कहे हुये दस गुण जिसमें हों, उसे साधु समझना चाहिये।

पढममणिच्चमसरणं,
संसारो एगया य अगणत्तं।
असुइत्तं आसव संवरो,
अ तह णिज्जरा नवमी ॥३०॥

"इस गाथा में तथा आगे की गाथा में बारह भावनाएं कही गई हैं।"

अनित्यभावना, अशरणभावना, संसारभावना, एकत्वभावना, अन्यत्वभावना, अशुचित्वभावना, आस्रव-भावना, संवरभावना, निर्जराभावना ॥३०॥

(१) धन, यौवन, कुटुम्ब आदि, संसार के सब

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

पदार्थ अनित्य हैं, ऐसा चिन्तन करना 'अनित्यभावना' कहाती है।

(२) सम्राट्, चक्रवर्ती, इन्द्र, तीर्थङ्कर आदि महापुरुषों को भी मृत्यु से कोई नहीं बचा सकता, फिर साधारण जीवों की तो बात ही क्या? मृत्यु के मुखमें पड़े हुए जीवका धन, कुटुम्ब आदि कोई शरण नहीं है, ऐसा हमेशा विचार करना तथा सिवा धर्मके किसीको शरण न मानना, 'अशरणभावना' कहाती है।

(३) चौरासी लाख योनियों में जीव भ्रमण करता है। किसी योनिमें माता; स्त्री बन जाती है; स्त्री माता बन जाती है; पिता, पुत्र बन जाता है; पुत्र, पिता बन जाता है; संसार की इस तरहकी अव्यवस्था का हमेशा विचार करना, 'संसारभावना' कहाती है।

(४) यह जीव संसार में अकेला आया है, अकेला ही जायगा और अकेला ही सुख या दुःख भोगेगा, कोई साथी होनेवाला नहीं, ऐसा हमेशा विचार करना, 'एकत्वभावना' कहाती है।

(५) आत्मा, ज्ञानस्वरूप है; शरीर जड़ है; शरीर आत्मा नहीं, न आत्मा शरीर है, शरीर, इन्द्रिय, मन, धन, कुटुम्ब आदि, आत्मा से जुदे हैं, ऐसा हमेशा विचार करना, 'अन्यत्वभावना' कहाती है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(६) यह शरीर, खून, मांस, हड्डी, मल, मूत्र आदिसे भरा है; यह शरीर किसी उपाय से पवित्र होने-वाला नहीं है, ऐसा हमेशा विचार करना, 'अशुचित्व-भावना' कहाती है।

(७) संसार के जीव क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्याज्ञान आदि से नये नये कर्म बांधते हैं, ऐसा हमेशा विचार करना, 'आस्रवभावना' कहाती है।

(८) कर्मबन्ध के कारणभूत, मिथ्याज्ञान आदि को रोकने के उपाय सम्यक्ज्ञान आदि हैं, ऐसा विचार करना, 'संवरभावना' कहाती है।

(९) निर्जराभावना दो तरह की है; सकामा और अकामा। समझकर तपके जरिये कर्मका क्षय करना सकामा। बिना समझे भूख प्यास आदि दुःखों के वेग को सहन करनेसे जो कर्मक्षय होता है, उसे अकामा कहते हैं। ऐसे चिन्तनको 'निर्जराभावना' कहते हैं।

लोगसहावो बोही,
दुल्लहा धम्मस्स साहगा अरिहा।
एआओ भावणाओ,
भावेअव्वा पयत्तेणं ॥ ३१ ॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

लोकस्वभावभावना, बोधिदुर्लभभावना और धर्मके कथक—उपदेशकर्त्ता सर्वज्ञ वीतरागका पाना मुश्किल है, इस तरहकी धर्मभावना, इन बारह भावनाओंको प्रयत्नसे विचारे ॥ ३१ ॥

(१०) कमर पर दोनों हाथोंको रखकर और पैरोंको फैलाकर खड़े हुये पुरुषकी आकृतिके समान यह लोक है, जिसमें धर्मास्तिकायादि छह द्रव्य भरे पड़े हैं। ऐसा विचार करना, 'लोकभावना' कहाती है।

(११) संसारमें अनन्तकालसे जीव भ्रमण कर रहा है। अनेकवार चक्रवर्त्तीके जैसी ऋद्धि पाई; मनुष्य-जन्म, उत्तम कुल, आर्य देश पाया तथापि सम्यक्ज्ञान (यथार्थज्ञान) पाना मुश्किल है, इस भावनाको 'बोधि-दुर्लभभावना' कहते हैं।

(१२) संसारसमुद्रसे पार उतारनेमें नौकाके समान ज्ञान, दर्शन और चारित्ररूप धर्मका उपदेश करने वाले अरिहंत आदिको पाना तथा उसके कहे हुए धर्मको पाना मुश्किल है; ऐसे विचारको 'धर्मभावना' कहते हैं।

सामाइअत्थ पढमं,
छेओवट्ठावणं भवे बीअं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

परिहारविसुद्धीअं,
सुहुमं तह संपरायं च ॥ ३२ ॥

"इस गाथा में पाँच प्रकार के चारित्रका वर्णन है।"

सामायिकचारित्र, छेदोपस्थापनीयचारित्र, परिहार-विशुद्धिचारित्र, सूक्ष्मसंपरायचारित्र ॥ ३२ ॥

(१) सामायिक में दो पद हैं; सम और आयिक सम याने रागद्वेष रहितपना उसकी आय याने प्राप्ति जिससे हो उसे सामयिक कहते हैं। सदोष व्यापारका त्याग और निर्दोष व्यापारका सेवन अर्थात् जिससे ज्ञान, दर्शन और चारित्रकी प्राप्ति हो, उस व्यापारको 'सामायिकचारित्र' कहते हैं।

(२) प्रधान साधुके द्वारा दिये हुये पाँच महाव्रतों को 'छेदोपस्थापनीय चारित्र' कहते हैं।

(३) तपोविशेष द्वारा कर्मोंकी विशुद्धि याने निर्जरा जिससे होती है उसे परिहार विशुद्धि कहते हैं। नव साधु गच्छसे अलग होकर सिद्धान्तमें लिखी हुई विधिके अनुसार अठारह मास तक तप करते हैं, उसे 'परिहार-विशुद्धिचारित्र' कहते हैं।

(४) जिस स्थिति में केवल सूक्ष्मसंपराय कषाय (लोभ) का ही उदयरह जाता है उसको सूक्ष्मसंपरायचारित्र

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

कहते हैं। यह चारित्र दसवें गुणस्थानक में पहुँचे हुये साधु को होता है।

तत्तो अ अहक्खायं,
 खायं सव्वंमि जीवलोगंमि।
जं चरिऊण सुविहिआ;
 वच्चंतिऽयरामरं ठाणं ॥२३॥

सब लोक में यथाख्यात-चारित्र प्रसिद्ध है, जिसका सेवन करके साधु लोग मोक्ष पाते हैं ॥२३॥

(५) क्रोध, मान, माया और लोभ इन चार कषायों के सर्वथा क्षय होने पर या उपशम होने पर साधु का जो चारित्र है, उसे "यथाख्यातचारित्र" कहते हैं।

इस जमाने में आदि के दो चारित्र हैं, अन्त के तीन व्युच्छिन्न हुये।

संवरतत्त्व समाप्त।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

निर्जरातत्त्व ।

अणसणमूणोअरिआ,
वित्तीसंखेवणं रसच्चाओ ।
कायकिलेसो संलीणया,
य बज्झो तवो होइ ॥३४॥

"इस गाथा में छह प्रकार का बाह्य तप कहा है ।"

अनशन, ऊनोदरता, वृत्तिसंक्षेप, रसत्याग, कायक्लेश और संलीनता, ये छह प्रकार के बाह्य तप हैं ॥३४॥

(१) आहार का त्याग, 'अनशन' कहलाता है, वह दो प्रकार का है; 'इत्वर' और 'यावत्कथिक'। चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि तप, 'इत्वर' कहलाता है और जब तक जीवे तब तक आहार का त्याग 'यावत्कथिक' तप कहलाता है।

(२) आहार कम करना, 'ऊनोदरता' तप कहाता है।

(३) वृत्तिका—जीवनके निर्वाह की चीजों का संक्षेप करना, 'वृत्तिसंक्षेप' तप है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से चार प्रकार का यह तप है।

(४) दूध, घी, तेल, दही, गुड़, तली हुई चीजें आदिका

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

त्याग, 'रसत्याग' कहलाता है; जैसे नीवी, आम्बिल आदि तप।

(५) साधु लोग, लोच करते हैं अर्थात् सिरके बाल उखाड़ते हैं, कायोत्सर्ग करते हैं और भी अनेक प्रकारसे शरीरको कष्ट पहुँचाते हैं, उसे सहते हैं, यह सब 'कायक्लेश' तप कहलाता है।

(६) इन्द्रियोंको वशमें रखना; क्रोध, लोभ आदि न करना; मन, वचन, कायासे किसी जीवको तकलीफ न होने देना; उपाश्रय आदि एकान्त जगहमें रहना; यह 'संलीनता' तप कहलाता है।

पायच्छित्तं विणओ,
वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं उस्सग्गो वि अ,
अब्भिंतरओ तवो होइ ॥ ३५ ॥

"इस गाथा में छह प्रकारका अभ्यन्तर तप कहा है।"

प्रायश्चित्त, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और उत्सर्ग, ये छह अभ्यन्तर तप हैं ॥ ३५ ॥

(१) जो पाप किये हों, उन्हें गुरुके पास कहे,

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

पापशुद्धिके लिये गुरु जो तप बतलावें, उसे करे, यह 'प्रायश्चित्त' कहाता है।

(२) देव, गुरु, माता, पिता आदि पूज्योंका आदर-सत्कार करना उन्हें अपने शुद्ध आचरणसे सन्तुष्ट रखना; इसे 'विनय' कहते हैं।

(३) आचार्य, उपाध्याय, साधु, तपस्वी, दीन आदिको अन्न, जल, वस्त्र, ठहरनेकेलिये जगह आदि देना; इसे "वैयावृत्त्य" कहते हैं।

(४) पढ़ना, पढ़ाना, सन्देह होनेपर गुरुसे पूछना, पढ़े हुये ग्रन्थको याद रखना, धर्मकी कथा कहना, धर्मका उपदेश देना; यह सब 'स्वाध्याय' कहलाता है।

(५) चित्तकी एकाग्रताको 'ध्यान' कहते हैं, उसके चार भेद हैं;—आर्त, रौद्र, धर्म और शुक्ल।

आर्त और रौद्र ध्यानका त्याग करना चाहिये।

धर्म और शुक्ल ध्यानका सेवन करना चाहिये।

आर्त—मित्र, माता, पिता आदिकी मृत्यु होनेपर शोक करना; कोढ़ी, रोगी आदिको देखकर घृणा करना; शरीरमें कोई रोग होनेपर उसीकी चिन्ता करना; इस जन्ममें किये हुये दान आदि तपका दूसरे जन्ममें अच्छे फल पानेकी चिन्ता करना; ये सब 'आर्तध्यान' कहलाते है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

रौद्र—द्वेषसे किसी जीवको मारने या उसे कष्ट पहुँचानेकी चिन्ता करना; छल कपट करके दूसरेका धन लेनेकी चिन्ता करना; हिस्सेदार कुटुम्बी मर जाँय तो मैं अकेला ही मालिक बन बैठूंगा ऐसी चिन्ता करना; ये सब 'रौद्रध्यान' कहाते हैं।

धर्म—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वैराग्य आदिकी भावना करना; सर्वज्ञ वीतराग के उपदेश रूप सिद्धांत में सन्देह न करके उसपर पूरी श्रद्धा रखना; राग, द्वेष; क्रोध, काम, लाभ, मोह आदि, इस लोक तथा परलोक में भी दुःख देने वाले हैं ऐसा चिन्तन करना; सुख दुःख प्राप्त होने पर हर्ष और शोक न कर पूर्वकर्म का फल मिल रहा है, ऐसा समझना; जिनेन्द्र भगवान् के कहे हुये छह द्रव्यों का विचार करना; यह सब 'धर्मध्यान' कहाता है।

शुक्ल—शुक्ल ध्यानके चार भेद हैं; पृथक्त्ववितर्क सविचार, एकत्ववितर्क अविचार, सूक्ष्मक्रिया अप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया अनिवृत्ति।

(१) द्रव्य, गुण और पर्याय के जुदाई को पृथक्त्व कहते हैं; अपनी आत्माके शुद्ध स्वरूप का अनुभवरूप भावश्रुत, वितर्क कहलाता है और मन, वचन, और काय, इन तीन योगों में से एक योग ग्रहण कर दूसरेमें संक्रमण करना, विचार कहलाता है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(२) आत्मद्रव्य में उसके विकार रहित सुख के अनुभवरूप पर्याय में या निरुपाधि ज्ञानरूप गुणमें आत्मानुभवरूप भावश्रुतके बलसे स्थिर होकर द्रव्य, गुण और पर्यायोंका विचार करना।

(३) तेरहवें गुणस्थानके अन्तमें मनोयोग और वचनयोगको रोकनेके बाद कामयोगको रोकनेमें प्रवृत्त होना।

(४) तीनों योगोंका अभाव होनेपर फिर च्युत न होनेवाला अनन्त ज्ञान, अनन्त सुखका एकरस अनुभव।

(६) उत्सर्ग तपके द्रव्य और भावरूपसे दो भेद हैं। द्रव्य उत्सर्ग—गच्छका त्याग करके 'जिनकल्प' स्वीकार करना; अनशनव्रत लेकर शरीरका त्याग; किसी कल्पविशेषमें उपधिका त्याग; सदोष आहारका त्याग; ये सब 'द्रव्योत्सर्ग' कहलाते हैं।

भावोत्सर्ग—क्रोध, मान, माया और लोभका त्याग, नरक आदि योनिकी आयु बाँधनेमें कारणभूत मिथ्याज्ञान आदिको त्याग; ज्ञानके आवरण करनेवाले ज्ञानावरणीय आदि कर्मका त्याग; ये सब 'भावोत्सर्ग' कहलाते हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

बारसविहं तवो णि,—
ज्जरा य बंधो चउविगप्पो अ ।
पयई–ठिइ–अणुभाग,—
प्पएसभेएहिं नायव्वो ॥३६॥

"इस गाथा में कुछ अंशोंका सम्बन्ध निर्जरातत्त्वके साथ है, अवशिष्ट अंशमें बन्धतत्त्वके चार भेद कहे गये हैं।"

प्रथम कहे हुये बारह प्रकारके तप हो निर्जरातत्त्वके बारह भेद हैं। प्रकृति, स्थिति, अनुभाग और बन्ध, ये चार बन्धके भेद हैं ॥ ३६ ॥

पयइ सहावो वुत्तो,
ठिई कालावहारणं ।
अणुभागो रसो णेओ,
पएसो दलसंचओ ॥ ३७ ॥

"इस गाथामें पूर्वोक्त प्रकृति आदिका स्वरूप कहा गया है।"

कर्मका स्वभाव 'प्रकृतिबन्ध' कहा जाता है; कर्मके कालका निश्चय 'स्थितिबन्ध'; कर्मका रस 'अनुभागबन्ध' और कर्मके दलका संचय, 'प्रदेशबन्ध' कहाता है ॥३७॥

प्रकृतिबन्ध—जिस तरह वात, पित्त और कफके

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

हरण करनेवाली चीजोंसे बने हुए लड्डूका स्वभाव, वात आदिको दूर करना है, उसी तरह किसी कर्मका स्वभाव जीवके ज्ञानका आवरण करना, किसी कर्मका जीवके दर्शनका आवरण करना, किसीका स्वभाव चारित्रका आवरण करना होता है, इस स्वभावको 'प्रकृतिबन्ध' कहते हैं।

स्थितिबन्ध—जैसे बना हुआ लड्डू, महीने, छह महीने या वर्ष तक एक ही हालतमें रहता है; उसी तरह कोई कर्म अन्तर्मुहूत तक रहता है, कोई सत्तर क्रोड़ाक्रोड़ी सागरोपम तक, कोई वर्ष तक, इसीको 'स्थितिबन्ध' कहते हैं।

अनुभागबन्ध—जिस तरह कोई लड्डू ज्यादा मीठा होता है कोई थोड़ा, कोई अधिक कडुआ होता है, कोई अल्प और कोई ज्यादा तीखा होता है कोई थोड़ा, इत्यादि अनेक प्रकारके रसवाला होता है, उसी तरह ग्रहण किये हुये कर्मदलोंमें तरतमभावसे देखा जाय तो किसीका रस फल ज्यादा शुभ होता है, किसीका थोड़ा और किसीका रस-फल अधिक अशुभ होता है किसीका अल्प इत्यादि अनेक प्रकारका रस होता है, उसे 'रसबन्ध' कहते हैं। अनुभाग और रस, दोनोंका मतलब एक ही है।

प्रदेशबन्ध—जैसे कोई लड्डू पावभर, कोई आधसेर

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

परिमाणका होता है। उसी तरह कोई कर्मदल, परिमाणमें कम होता है और कोई ज्यादा, अनेक प्रकारके परिमाण होते हैं, इन परिमाणोंको 'प्रदेशबन्ध' कहते हैं।

" आठ कर्मों का—प्रत्येक का—स्वभाव, दृष्टान्तोंके द्वारा।"
दिखलाते हैं।

पड-पडिहारऽसि-मज्ज,
हड-चित्त-कुलाल-भंडगारीणं।
जह एएसिं भावा,
कम्माण वि जाण तह भावा ॥३८॥

पट, प्रतिहारी, असि, मद्य, कारागृह, चित्रकार, कुलाल और भण्डारी इनके स्वभाव के सदृश कर्मों का स्वभाव है ॥३८॥

(१) आँख पर बाँधे हुई पट्टी के सदृश, ज्ञानावरणीय कर्मका स्वभाव है। वह आत्माके अनन्त ज्ञान को रोक देता है।

(२) द्वारपाल के समान, दर्शनावरणीय कर्म का स्वभाव है। जिस प्रकार राजा को देखने की चाहनेवाले को द्वारपाल रोकता है, उसी तरह आत्मा के दर्शन गुण को दर्शनावरणीय कर्म रोक देता है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(३) वेदनीय कर्मका स्वभाव, शहद लगी हुई तलवारकी धारके सदृश है। यह कर्म आत्माके 'अव्याबाध' गुणको रोक देता है। तलवारको धारमें लगे हुये शहद को चाटने के समान, सातावेदनीय कर्मका विपाक है। खड्गधारा से जोभ के कटने पर, अनुभव में आती हुई पीड़ाके समान, असाताबेदनीय कर्म का विपाक है। सांसारिक सुख, दुःखसे मिला हुआ है इसलिए निश्चय-दृष्टिसे, सिवा आत्मसुखके, पुद्गलनिमित्तक सुख; दुःख-रूप ही समझा जाता है।

(४) मद्यके नशे के समान, मोहनीय कर्मका स्वभाव है। यह आत्मा के सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र गुणको ढँक देता है।

जैसे मद्यके नशेमें चूर मनुष्य,अपना हित-अहित नहीं समझ सकता, इसी प्रकार मोहनीय कर्मके उदय से आत्मा को धर्म अधर्म का भान नहीं रहता।

(५) आयुकर्मका स्वभाव, कारागृह के समान है। यह कर्म, आत्माके 'अविनाशित्व' धर्मको रोक देता है। जिस प्रकार जेलमें पड़ा हुआ मनुष्य, उससे निकलना चाहता है पर सजा पूर्ण हुये बिना नहीं निकल सकता, उसी तरह नरकादि योनि में पड़ा हुआ जीव, आयु पूर्ण किये बिना, उन योनियों से नहीं छूट सकता।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(६) नामकर्म का स्वभाव, चित्रकार जैसा है। यह कर्म, आत्माके 'अरुपित्व' धर्मको रोकता है। जैसे चितेरा, भले-बुरे अनेक प्रकार के चित्र बनाता है, उसी प्रकार नामकर्म, आत्माको भले बुरे नाना प्रकारके देव-मनुष्य नारक-तिर्यञ्च बना देता है।

(७) कुम्भार जैसा गोत्र कर्म है। यह कर्म आत्मा के 'अगुरुलघु' गुण को रोकता है।

कुम्भार घी रखने के घड़े बनाता है और मद्य रखनेके भी। घीका घड़ा अच्छा समझा जाता है और मद्यका बुरा। इसी तरह गोत्र कर्मके उदय से जीव ऊंच-नीच कुलमें जन्म लेता है।

(८) अन्तराय कर्मका स्वभाव भण्डारी जैसा है। यह कर्म जीवकेवीर्यगुण को तथा दान आदि लब्धियोंको रोकता है। जैसे मालिक इच्छा होते हुये भी, दुष्ट भण्डारी के कारण दान आदि नहीं कर सकता, इसी प्रकार अन्तराय कर्म के उदय से जीव दान आदि नहीं कर सकता, न अपनी शक्ति का विकास कर सकता है।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

" आठ कर्मों के नाम और उनकी उत्तर प्रकृतियां ।"

इह नाण-दंसणावरण—,
वेय-मोहाऽऽउ-नाम-गोआणि ।
विग्घं च पण-नव-दुअ—,
ट्ठवीस-चउ-तिसय-दु-पणविहं ॥ ३९॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तराय ये आठ कर्म हैं। ज्ञानावरणीय की उत्तर प्रकृतियाँ पाँच हैं; दर्शनावरणीय की नव; वेदनीय को दो; मोहनीयकी अट्ठाईस; आयुकी चार; नामकर्मकी एकसौ तीन; गोत्रकी दो; और अन्तरायकी पांच उत्तर प्रकृतियां हैं ॥३९॥

"आठ कर्मों का उत्कृष्ट स्थितिबन्ध ।"

नाणे अ दंसणावरणे,
वेअणीए चेव अंतराए अ ।
तीसं कोडाकोडी,
अयराणं ठिइ अ उक्कोसा ॥४०॥

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय और अन्तराय

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

इन चार कर्मोंको उत्कृष्ट स्थिति—अर्थात् अधिक से अधिक स्थिति, तीस क्रोड़ाकोड़ी सागरोपमकी है ॥४०॥

——

सत्तरि कोडाकोडी,
मोहणीए वीस नाम गोएसु।
तित्तीसं अयराइं,
आउट्ठिइबंध उक्कोसा ॥४१॥

मोहनीय कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति सत्तर ७० क्रोड़ाकोड़ी सागरोपमकी है। नाम कर्म और गोत्र कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति बीस क्रोड़ाकोड़ी सागरोपमको है। आयु कर्मकी उत्कृष्ट स्थिति तेतीस सागरोपमकी है ॥४१॥

———

"आठ कर्मोंकी जघन्य स्थिति कहते हैं।"

बारस मुहुत्त जहन्ना,
वेयणीए अट्ठ नाम-गोएसु।
सेसाणंतमुहुत्तं,
एयं बंधट्ठिईमाणं ॥४२॥

वेदनीय कर्मकी जघन्यस्थिति—अर्थात् कम से कम स्थिति, बारह मुहूर्त्त की है। नामकर्म और गोत्र कर्मकी

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

जघन्यस्थिति आठ मुहूर्त की है। शेष कर्मों की अर्थात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीयआयु, और अन्तराय इन पांच कर्मों की जघन्य स्थिति अन्तर्मुहूर्त की है ॥४२॥

मोक्षतत्त्व ।

संतपयपरूवणया,
दव्वपमाणं च खित्त फुसणा य ।
कालो अ अंतर भाग,
भावे अप्पाबहुँ चेव ॥ ४३ ॥

"इस गाथामें मोक्षके नव भेद कहे हैं।"

सत्पदप्ररूपणाद्वार, द्रव्यप्रमाणद्वार, क्षेत्रद्वार, स्पर्शनाद्वार, कालद्वार, अन्तरद्वार, भागद्वार, भावद्वार और अल्पबहुत्वद्वार, ये मोक्षके नव द्वार हैं अर्थात् मोक्षका स्वरूप समझनेके नव भेद हैं ॥ ४३ ॥

संतं सुद्धपयत्ता,
विज्जंतं खकुसुमव्व न असंतं ।
मुक्खत्ति पयं तस उ,
परूवणा मग्गणाईहिं ॥ ४४ ॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

'इस गाथा में सत्पदप्ररूपणाद्वार का स्वरूप कहा है।"

मोक्ष, सत् अर्थात् विद्यमान, है क्योंकि उसका वाचक एक पद है, आकाशकुसुम की तरह वह अविद्यमान नहीं है; मार्गणा द्वारा मोक्ष की प्ररूपणा (विचार) की जाती है ॥४३॥

एक पदका वाच्य अर्थ अवश्य होता है; घट, पट आदि एक पदवाले शब्द हैं उनका वाच्य अर्थ भी विद्यमान है; दो पदवाले शब्दों के वाच्य अर्थ होते भी हैं, और नहीं भी होते;—जैसे 'गोशृंग' 'महिषशृङ्ग'। ये शब्द, दो दो पदों से बने हैं, इनका वाच्य अर्थ, 'गायका सींग,' भैंस का सींग' प्रसिद्ध है। 'खरशृंग', 'अश्वशृंग' ये दो शब्द भी दो दो पदों से बने हुये हैं परन्तु इनके वाच्य अर्थ 'गधेका सींग', 'घोड़े का सींग' अविद्यमान हैं। मोक्ष शब्द एकपदवाला होनेसे उसका वाच्य अर्थ भी घट पट आदि पदार्थों की तरह विद्यमान है। इस प्रकार अनुमान प्रमाणसे 'मोक्ष' है, यह बात सिद्ध होती है ॥४४॥

चौदह मार्गणाओं के नाम।

गई इंदिए काए
जोए वेए कसाय नाणे अ।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

संजम दंसण लेसा,
भव सम्मे सन्नि आहारे ॥४५॥

१—गतिमार्गणा, २—इन्द्रियमार्गणा, ३—काय मार्गणा, ४ योग मार्गणा, ५—वेद मार्गणा, ६—कषाय मार्गणा, ७—ज्ञान मार्गणा, ८—संयम मार्गणा, ९—दर्शन मार्गणा, १०—लेश्या मार्गणा, ११—भव्य मार्गणा, १२—सम्यक्त्व मार्गणा, १३—संज्ञी मार्गणा, और १४—आहार मार्गणा ॥४५॥

मार्गणा का अर्थ और प्रत्येक के भेद अगली गाथा में कहे जायेंगे।

नरगइ पणिंदि तस भव,
सन्नि अहक्खाय खइअसम्मत्ते।
मुक्खोऽणाहार केवल,—
दंसण नाणे न सेसेसु ॥४६॥

"इस गाथा में यह बतलाया गया है कि जीव किन मार्गणाओं के द्वारा मोक्ष पाता है।"

मनुष्यगति, पंचेन्द्रिय, त्रसकाय, भवसिद्धिक, संज्ञी, यथाख्यातचारित्र, क्षायिकसम्यक्त्व, अनाहार, केवलदर्शन और केवलज्ञान, इन दस मार्गणाओं के द्वारा मोक्ष होता

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

है, शेष मार्गणाओं के द्वारा नहीं ॥४६॥

सम्पूर्ण जीवद्रव्यका जिसके जरिये विचार किया जाय उसे 'मार्गणा' कहते हैं।

मार्गणा के मूलभूत चौदह भेद हैं और उत्तर भेद बासठ।

(१) नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य और देव इन चार गतियों में से सिर्फ मनुष्यगति से मोक्ष मिलता है, अन्य तीन गतियों से नहीं।

(२) इन्द्रियमार्गणा के पांच भेद हैं, एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय। इनमें से पंचेन्द्रियद्वारमें मोक्ष होता है अर्थात् पांचों इन्द्रियाँ पाया हुआ जीव मोक्ष जा सकता है।

(३) कायमार्गणा के छह भेद हैं, पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय। इनमें से त्रसकाय के जीव मोक्ष जा सकते हैं, अन्यकाय के नहीं।

(४) भवसिद्धिक मार्गणा के दो भेद हैं, भवसिद्धिक और अभवसिद्धिक। इनमें से भवसिद्धिक अर्थात् भव्य जीव मोक्ष जा सकते हैं, अभव्य नहीं।

(५) संज्ञीमार्गणा के दो भेद हैं, संज्ञीमार्गणा और

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

असंज्ञीमार्गणा । इनमें से संज्ञी जीव मोक्ष जा सकते हैं, असंज्ञी नहीं ।

(६) चारित्रमार्गणा के पांच भेद हैं, सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसम्पराय और यथाख्यातचारित्र । इनमें से यथाख्यात चारित्रका लाभ होने पर जीव मोक्ष जाता है, अन्य चारित्र से नहीं ।

(७) सम्यक्त्वमार्गणा के पांच भेद हैं, औपशमिक सास्वादन, क्षायोपशमिक, वेदक और क्षायिक। इनमें से क्षायिक सम्यक्त्व का लाभ होने पर जीव मोक्ष जाता है; अन्य सम्यक्त्व से नहीं ।

(८) अनाहारमार्गणा के दो भेद हैं, अनाहारक और आहारक । इनमें से अनाहारक जीव को मोक्ष होता है, आहारक अर्थात् आहार करनेवाले को नहीं ।

(९) ज्ञानमार्गणा के पाँच भेद हैं, मतिज्ञान, श्रुत-ज्ञान, अवधिज्ञान,मनः पर्यवज्ञान और केवलज्ञान । इनमें से केवल ज्ञान होने पर मोक्ष होता है, अन्य ज्ञानसे नहीं ।

(१०) दर्शनमार्गणाके चार भेद हैं; चक्षुर्दर्शन, अचक्षुर्दर्शन, अवधिदर्शन और केवलदर्शन । इनमें से केवलदर्शन होनेपर मोक्ष होता है; अन्य दर्शनसे नहीं ।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(११) योग तीन हैं मनोयोग, वचनयोग और काय योग। इनमें से किसी में मोक्ष नहीं है।

(१२) वेद तीन हैं—स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुंसक-वेद। इनमें से किसी वेद में मोक्ष नहीं है।

(१३) कषाय चार हैं—क्रोध, मान, माया, और लोभ इनमें में किसी में मोक्ष नहीं हैं।

कष याने संसार उसका आय याने लाभ जिससे होता है उसे कषाय कहते हैं।

(१४) लेश्या छ है—कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेश्या, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ललेश्या इनमें भी किसी में मोक्ष नहीं है। लेश्या याने मनके परिणाम।

दव्वपमाणे सिद्धाणं,
जीवदव्वाणि हुंति णंताणि।
लोगस्स असंखिज्जे,
भागे इक्को य सव्वे वि॥ ४७॥

"इस गाथा में द्रव्यप्रमाणद्वार और क्षेत्रद्वारका वर्णन है।"

द्रव्यप्रमाणद्वारके विचारसे सिद्धोंके जीवद्रव्य

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

अनन्त हैं। द्रव्य प्रमाण याने सिद्धों के जीव कितने हैं उसका विचार करना।

क्षेत्रद्वारके विचारसे लोकाकाशके असंख्यातवें भागमें एक सिद्ध रहता है, उसी तरह सब सिद्ध भी, लोकाकाश के असंख्यातवें भागमें रहते हैं; परन्तु एक सिद्धसे व्याप्त क्षेत्रकी अपेक्षा, सब सिद्धोंसे व्याप्त क्षेत्रका परिमाण अधिक है ॥ ४७ ॥

फुसणा अहिआ कालो,
इग सिद्ध पडुच्च साइओऽणंतो।
पडिवायाभावाओ,
सिद्धाणं अंतरं नत्थि ॥ ४८ ॥

"इस गाथामें स्पर्शना, काल और अन्तर, ये तीन द्वार कहे हैं।"

(१) क्षेत्रसे सिद्ध जीवोंकी स्पर्शना अधिक है। एक सिद्धकी अपेक्षासे काल, सादि (आदिसहित) अनन्त होता है। सिद्धगतिमें गये हुए जीवका पतन नहीं होता इसलिये अन्तर नहीं है ॥ ४८ ॥

जीव, कर्मसे मुक्त होकर जिस आकाशक्षेत्रमें रहते हैं, उसे सिद्धक्षेत्र कहते हैं। उसका (सिद्धाकाशक्षेत्रका) प्रमाण पैंतालीस लाख योजन लंबा चौड़ा है, उस क्षेत्रमें

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

विद्यमान सिद्धोंके नीचे, ऊपर तथा चारों तरफ आकाश-प्रदेश लगे हुये हैं इसलिये क्षेत्रकी अपेक्षासे सिद्धजीवोंकी स्पर्शना अधिक है।

(२) एक सिद्धकी अपेक्षासे काल, सादिअनन्त है, जिस समय जीव मोक्ष गया, वह काल उस जीवके मोक्षका आदि है, फिर उस जीवका मोक्षगतिसे पतन नहीं होता इसलिये अनन्त है।

सब सिद्धोंकी अपेक्षासे विचारें तो मोक्षकाल, अनादि अनन्त है क्योंकि यह नहीं कहा जासकता कि, अमुक जीव सबसे प्रथम मुक्त हुआ। अर्थात् उससे पहले कोई जीव मुक्त न था।

(३) अन्तर उसे कहते हैं; "यदि सिद्ध अपनी अवस्था से पतित होकर दूसरी योनि धारण करने के बाद फिर सिद्धगति प्राप्त करे;" सो हो नहीं सकता क्योंकि सिद्धगति को छोड़कर अन्यगति पानेका कोई निमित्त नहीं है, इसलिये उक्त अन्तर मोक्ष में नहीं है। अथवा सिद्धों में परस्पर क्षेत्रकृत अन्तर नहीं है क्योंकि जहां एक सिद्ध है, वहां बहुत से सिद्ध हैं। कालकृत और क्षेत्रकृत, दोनों अन्तर सिद्धों में नहीं हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

सव्वजियाणमणंते,
भागे ते तेसिं दंसणं नाणं ।
खइए भावे परिणा,—
मिए अ पुण होइ जीवत्तं ॥४९॥

"इस गाथामें भागद्वार और भावद्वार कहते हैं।"

सब सिद्धोंके जीव, संसारी जीवोंका अनन्तवाँ भाग है। उन सिद्धोंका केवलज्ञान और केवलदर्शन,क्षायिक भाव से और जीवितव्य (जीना),पारिणामिक भावसे है ॥ ४९ ॥

(१) भागद्वार—भूत, भविष्यत् और वर्तमान इन तीनों कालोंमें यदि कोई ज्ञानीसे सिद्धोंके बारेमें पूछे कि कितने जीव मोक्षमें गये हैं, तो, ज्ञानी यहीं उत्तर देगा कि, "असंख्यात निगोद हैं, प्रत्येक निगोदमें अनन्त जीव हैं, उनमेंसे एक निगोदका अनन्तवाँ भाग मोक्ष पा चुका," इसे भागद्वार कहते हैं।

(२) भावद्वार—सिद्धोंके दो भाव होते हैं; क्षायिक और पारिणामिक। क्षायिक के नव भेद हैं और पारिणामिकके तीन। केवलज्ञान और केवलदर्शनसे अतिरिक्त सात क्षायिक भाव सिद्धको नहीं होते इसी प्रकार जीवितव्यको छोड़कर अन्य दो पारिणामिक भाव भी नहीं होते।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

क्षायिक भाव ये हैं; दान, लाभ, भोग, उपभोग, वीर्य, सम्यक्त्व, चारित्र, केवलज्ञान और केवलदर्शन।

किसी कर्मके क्षयसे होनवाले भावको क्षायिक भाव कहते हैं।

पारिणामिक भाव ये हैं; भव्यत्व, अभव्यत्व और जीवितव्य।

ज्ञान, दर्शन, चारित्र और वीर्य-रूप भावप्राण, सिद्ध जीवोंके हैं। पाँच इन्द्रियाँ, मनोबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयु, ये दस द्रव्यप्राण सिद्धोंको नहीं होते। उपशम क्षय, और क्षयोपशमकी अपेक्षा न रखनेवाले जीवके स्वभावको पारिणामिक भाव कहते हैं।

थोवा नपुंससिद्धा,
थीनरसिद्धा कमेण संखगुणा।
इअ मुक्खतत्तमेअं,
नव तत्ता लेसओ भणिआ ॥ ५० ॥

"इस गाथामें अल्पबहुत्वद्वार कहा है।"

नपुन्सकसिद्ध, कम हैं; उससे स्त्रीसिद्ध, संख्यात गुण अधिक हैं; स्त्रीसिद्धसे पुरुषसिद्ध संख्यात गुण अधिक हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

यह मोक्षतत्त्व है। इस तरह नव तत्त्व संक्षेपसे कहे गये ॥५०॥

दो तरह के नपुन्सक होते हैं; जन्मसिद्ध और कृत्रिम। जन्मसिद्ध नपुन्सकोंको मोक्ष नहीं होता, कृत्रिम नपुन्सक एक समयमें उत्कृष्ट दस तक मोक्ष जाते हैं, स्त्रियाँ एक समयमें उत्कृष्ट बीस तक मोक्ष जाती हैं और पुरुष एक समयमें उत्कृष्ट एकसौ आठ तक मोक्ष जाते हैं।

जीवाइ नव पयत्थे,
जो जाणइ तस्स होइ सम्मत्तं।
भावेण सद्दहंतो,
अयाणमाणेवि सम्मत्तं ॥ ५१ ॥

"इस गाथामें नवतत्त्व जाननेका फल कहते हैं।"

जो जीव, जीवादि नव तत्त्वोंको जानता है उसे सम्यक्त्व प्राप्त होता है। जीवादि पदार्थोंके नहीं जानने-वाले भी यदि अन्तःकरणसे ऐसी श्रद्धा रक्खें कि, "सर्वज्ञ वीतराग, जिनेश्वर भगवानके कहे हुये नव तत्त्व सच हैं, अशङ्कनीय हैं," तो समझना चाहिये कि उन्हें भी सम्यक्त्व है ॥ ५१ ॥

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

सव्वाइ जिणेसरभा,—
सिआइं वयणाइ नन्नहा हुंति।
इय बुद्धी जस्स मणे,
सम्मत्तं निच्चलं तस्स ॥ ५२ ॥

"इस गाथामें सम्यक्त्वका स्वरूप कहा गया है।"

जिनेन्द्र भगवानके कहे हुये सभी वचन अन्यथा (झूठ) नहीं हैं, ऐसी जिसको बुद्धि हो, उसे निश्चल सम्यक्त्व हुआ है, ऐसा समझना चाहिये ॥ ५२ ॥

आप्त, वीतराग, सर्वज्ञके उपदिष्ट पदार्थ सच हैं ऐसी दृढ़ श्रद्धाको (आत्माके परिणामविशेषको) सम्यक्त्व कहते हैं।

अंतोमुहुत्तमित्तंपि,
फासिअं हुज्ज जेहिं सम्मत्तं।
तेसिं अवड्ढपुग्गल—,
परिअट्टो चेव संसारो ॥ ५३ ॥

"इस गाथामें सम्यक्त्वलाभका फल कहते हैं।"

जिनको एक अन्तर्मुहूर्त मात्र भी सम्यक्त्वका स्पर्श

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

हुआ हो, उनका अर्धपुद्गलपरावर्त संसार बाकी रहा है ॥ ५३ ॥

सिर्फ अन्तर्मुहूर्त तक जिस जीवका परिणाम, सम्यक्त्वरूप होगया हो, उस जीवको अर्धपुद्गलपरावर्त तक संसारमें भ्रमण करना पड़ेगा, बाद अवश्य मोक्ष मिलेगा।

यह कालपरिमाण उस जीवके लिये कहा गया है जिसने बहुत आशातना की हो, या करनेवाला हो। शुद्ध सम्यक्त्वका आराधन करनेवाला जीव तो, उसी जन्ममें, कोई जीव तीसरे जन्ममें, कोई सातवें जन्ममें, कोई आठवें जन्ममें इस तरह शीघ्र मुक्ति पाता है।

उस्सप्पिणी अणंता,
पुग्गलपरिअट्टओ मुणेअव्वो।
तेणंता तीअद्धा,
अणागयद्धा अणंतगुणा ॥ ५४ ॥

"इस गाथामें पुद्गलपरावर्तनका स्वरूप कहा है।"

अनन्त उत्सर्पिणी और अनन्त अवसर्पिणी बीत जानेपर एक 'पुद्गलपरावर्तन' होता है, इस तरहके अनन्त

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

'पुद्गलपरावर्तन' पहले हो चुके और अनन्तगुणे आगे होंगे ॥ ५४ ॥

जिण-अजिण-तित्थ-ऽतित्था,
गिहि-अन्न-सलिंग थी-नर-नपुंसा ।
पत्तेय-सयंबुद्धा,
बुद्धबोहिक्कऽणिक्का य ॥ ५५ ॥

"इस गाथामें सिद्धोंके पंदरह भेद कहे गये हैं।"

(१) तीर्थङ्करसिद्ध, (२) अतीर्थङ्करसिद्ध, (३) तीर्थसिद्ध, (४) अतीर्थसिद्ध, (५) गृहस्थलिङ्गसिद्ध, (६) अन्यलिङ्गसिद्ध, (७) स्वलिंगसिद्ध, (८) स्त्रीसिद्ध, (९) पुरुषसिद्ध, (१०) नपुन्सकसिद्ध, (११) प्रत्येकबुद्धसिद्ध, (१२) स्वयंबुद्धसिद्ध, (१३) बुद्धबोधितसिद्ध, (१४) एकसिद्ध और (१५) अनेकसिद्ध; ये पंदरह सिद्धके भेद हैं ॥ ५५ ॥

(१) तीर्थङ्कर होकर जिन्होंने मुक्ति पाई, वे जिन-तीर्थङ्कर सिद्ध । ऋषभ, महावीर आदि ।

(२) सामान्य केवली, अजिन—तीर्थङ्करसिद्ध कहलाते हैं, जैसे पुण्डकरीक आदि ।

(३) चतुर्विध संघकी स्थापना करने के बाद जिन्होंने मुक्ति पाई वे 'तीर्थसिद्ध,' जैसे गौतम आदि गणधर ।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(४) चतुर्विध संघकी स्थापना करने के पहले जिन्होंने मुक्ति पाई वे 'अतीर्थसिद्ध,' जैसे मरुदेवी आदि।

(५) गृहस्थ के वेष में जिन्होंने मुक्ति पाई वे 'गृहस्थलिंगसिद्ध,' जैसे मरुदेवी माता आदि।

(६) सन्यासी आदि अन्यवेषधारी साधुओं ने मुक्ति पाई वे 'अन्यलिंगसिद्ध,' जैसे 'वल्कलचीरी' आदि।

(७) रजोहरण आदि अपने वेष में रहकर जिन्होंने मुक्ति पाई वे 'स्वलिंगसिद्ध,' जैसे जैनवेषधारी साधु।

(८) 'स्त्रीलिंगसिद्ध,' जैसे चन्दनबाला आदि।

(९) 'पुरुषलिंगसिद्ध,' जैसे गौतम आदि।

(१०) 'नपुन्सकलिंगसिद्ध,' जैसे भीष्म आदि।

(११) किसी अनित्य पदार्थ को देख कर विचार करते करते जिन्हें बोध हुआ बाद केवलज्ञान प्राप्त हुआ और सिद्ध हुए वे 'प्रत्येकबुद्ध,' जैसे करकण्डू राजा आदि।

करकण्डू राजा को सन्ध्या के समय आकाश में गन्धर्व नगरों का (बादलों का नगर) बनना और मिटना देखकर वैराग्य हो गया था कि संसार के सब पदार्थ इसी तरह नाशवान् हैं।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

(१२) 'स्वयंबुद्धसिद्ध';—बिना उपदेशके, पूर्वजन्मके संस्कार उद्बुद्ध होने से जिन्हें ज्ञान हुआ और सिद्ध हुए वे। जैसे कपिल आदि।

कपिल को साधुओं के पात्र देख कर ज्ञान हुआ था कि मैं ने भी ऐसे पात्र कभी देखे हैं, ऐसा सोचते सोचते पूर्व भव का स्मरण हो गया और सिद्ध हुए।

(१३) गुरुके उपदेश से ज्ञानी होकर जो सिद्ध हुये, वे, 'बुद्धबोधित सिद्ध'।

(१४) एक समय में एक ही मोक्ष जानेवाले 'एकसिद्ध,' जैसे महावीर स्वामी आदि।

(१५) एक समय में अनेकमुक्त होने वाले 'अनेकसिद्ध कहलाते हैं, जैसे ऋषभदेव आदि।

"सिद्ध जीवों के उदाहरण चार गाथाओं के द्वारा कहे जाते हैं"

जिणसिद्धा अरिहंता,
अजिणसिद्धा य पुंडरिअ पमुहा
गणहारि तित्थसिद्धा,
अतित्थसिद्धा य मरुदेवी ॥५६॥

ऋषभ आदि तीर्थङ्कर, 'जिनसिद्ध' कहलाते हैं,

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

और पुण्डरीक वगैरह 'अजिनसिद्ध'। गणधर 'तीर्थसिद्ध' कहलाते हैं और मरुदेवी 'अतीर्थसिद्ध' ॥५६॥

गिहिलिंगसिद्ध भरहो,
वक्कलचीरी य अन्नलिंगम्मि ।
साहू सलिंगसिद्धा,
थीसिद्धा चंदणापमुहा ॥५७॥

भरत चक्रवर्ती 'गृहस्थलिंग सिद्ध'; वल्कलचीरी 'अन्यलिंगसिद्ध'; जैनसाधु 'स्वलिंगसिद्ध'; चन्दनबाला आदि 'स्त्रीसिद्ध' ॥५७॥

पुंसिद्धा गोयमाई,
गांगेयपमुह नपुंसया सिद्धा ।
पत्तेय-सयंबुद्धा,
भणिया करकंडु-कविलाई ॥५८॥

गौतम आदि 'पुरुषलिंगसिद्ध'। भीष्म आदि 'नपुन्सकलिंगसिद्ध'। करकंडु राजा 'प्रत्येक बुद्धसिद्ध' कपिल आदि 'स्वयंबुद्ध' ॥१५॥

तह बुद्ध बोहि गुरुबो—
हिया य इगसमय एगसिद्धा य ।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

इगसमये वि अणेगा,
सिद्धा ते णेगसिद्धा य ॥५९॥

गुरुके उपदेश से ज्ञानी होकर जो मुक्त हुए वे, 'बुद्धबोधित सिद्ध'। महावीर स्वामी की तरह, एक समयमें एक ही मोक्ष गया, वह 'एक सिद्ध'। ऋषभदेव भगवान् के सदृश, एक समय में अनेक मुक्त हुये, वे 'अनेकसिद्ध' ॥५९॥

अब संसार के जीवों में से कितने जीव मोक्ष में गये हैं, उसको बतलाते हैं।

जइ आइ होई पुच्छा,
जिणाण मग्गंमि उत्तरं तइया।
इक्कस्स निग्गोयस्स,
अणन्त भागो अ सिद्धगओ ॥६०॥

अर्थ—जब जब भगवान् से यह प्रश्न किया गया कि अब संसार में से कितने जीव मोक्ष में गये हैं, तब यही उत्तर मिला कि एक निगोद का अनन्तवां भाग मोक्ष में गया है। जब कि ऐसे असंख्य निगोद हैं। साधारण वनस्पति कायको निगोद कहते हैं।

* समाप्त *

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

मुद्रक—पं० भूपसिंह शर्मा,
सरस्वती प्रेस, बेलनगंज-आगरा।

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal

Shri Mahavir Jain Aradhana Kendra www.kobatirth.org Acharya Shri Kailashsagarsuri Gyanmandir

For Private And Personal